युक्रान्द
वर्ष २/२ १५-१-७०

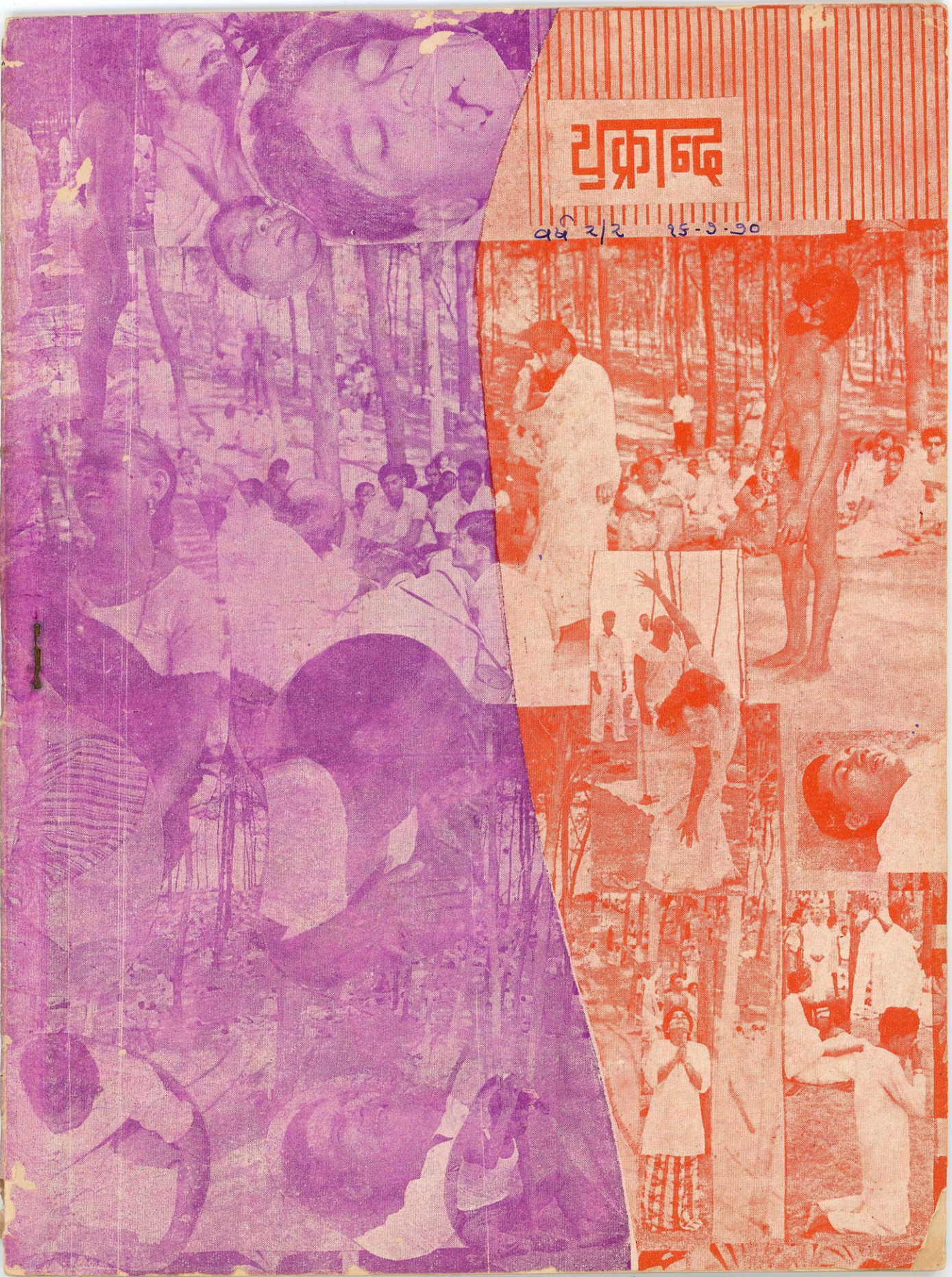

"जिनको आदमी में भगवान नहीं दिखता, उन्हें पत्थर की मूर्ति में कैसे दिख सकता है।"

—आचार्य रजनीश

●

महत्वपूर्ण सूचना

आचार्य श्री की रेडियो वार्ता

●

आल इन्डिया रेडियो, देहली से दिनांक १० अगस्त ७० को रात्रि ९.३० बजे से नेशनल प्रोग्राम में आचार्य श्री की "विज्ञान के सामाजिक आयाम : जीवन के प्रति दृष्टिकोण" विषय पर हिन्दी वार्ता प्रसारित होगी।

●

मुखपृष्ठ के चित्र : नारगोल साधना शिविर से

●

(युक्रांद के लिए नारगोल साधना शिविर की विशेष रिपोर्ट : पृष्ठ ५ पर)

मुक्ति के तीन आयाम

(आचार्य श्री की पत्र प्रेरणा के माध्यम से अभिनव जीवन दृष्टि)

⁘ सत्य अनुसंधान की अभीप्सा

सत्य के अनुसंधान की इतनी अभीप्सा बहुत ही कम व्यक्तियों में होती है। और तुम्हारे हृदय की धड़कनों में तो बस सत्य की ही प्यास है, यह प्यास बहुत शुभ है क्योंकि अंततः उसकी पीड़ा ही प्राप्ति बन जाती है। भूमि में दबा कोई बीज जिस भांति अंकुरित होने को व्याकुल होता है, जब प्राण परमात्मा के लिए भी उसी भांति व्याकुल हो उठते हैं तो फिर कोई बाधा बाधा नहीं रह जाती है। वस्तुतः, बाधा है ही नहीं। हममें प्यास की तीव्रता का न होना ही बाधा है। वह प्यास तुममें है, इसलिए तुम्हारे प्रति मैं बहुत बहुत आशा से भरा हुआ हूं। स्मरण रहे कि मेरा सारा प्रेम और सारी प्रार्थनाएं उनके लिए हैं जो कि परमात्मा के प्यासे हैं और परमात्मा के लिए पागल हैं। उन थोड़े से पागलों में मैं तुम्हारी भी गणना करता हूं।

⁘⁘ दासता से मुक्ति

जिसके भी हृदय में सत्य की अभीप्सा जाग जाती है, उसे सत्य के बिना एक भी क्षण जीना कठिन हो जाता है। उसकी श्वास श्वास व्याकुल हो उठती है और उसके प्राण अहर्निश ही परम सत्ता के लिए आतुर रहने लगते हैं। इसे ही मैं उपवास कहता हूं। और, यही व्याकुलता अंततः उस संकट पर ले आती है, जहां कि जीवन आमूलतः रूपांतरित हो जाता है।

सत्य की उपलब्धि के पूर्व एक बड़े संकट और संक्रांति से गुजरना पड़ता है। वही उसकी प्राप्ति का मूल्य है। सत्य तो बहुत लोग चाहते हैं, लेकिन मूल्य चुकाने को कोई बिरला ही राजी होता है। मैं जानता हूं कि उस मूल्य को चुकाने की भी तुम्हारी तैयारी है और इसलिए ही बहुत आशा से भरा हुआ हूं।

बीज तैयार है बोने भर को देर है और अंकुर निकलने शुरू हो जायेंगे। वह बीज ही अंकुर बनने को व्याकुल भी हो रहा है।

मनुष्य के मन पर हजारों वर्षों की मृत परम्पराओं का बोझ है। यह बोझ उसे मुक्त नहीं होने देता। यह दासता बहुत गहरी है। इसके कारण ही वह उस स्वतंत्रता को अनुभव नहीं कर पाता है जो कि सत्य का द्वार है।

परमात्मा में जन्म के पूर्व सब भांति की दासता से मुक्त होना आवश्यक है क्योंकि केवल मुक्त चित्त ही मुक्ति की अनुभूति करने में समर्थ हो सकता है।

मैं तुम्हारे मन में प्रगट हो रही उन्मुक्तता से कितना आनंदित हूं—यह कैसे कहूं ? किसी भी चित्त की कड़ियाँ टूटते देखकर मैं आल्हादित होता हूं, फिर तुम्हें तो मैंने सदा ही अपना जाना है। तुम्हारे गिरते बन्धन भी मेरे हैं और तुम्हारी आत्मा को मिलता आकाश भी मेरा ही है। परमात्मा से एक ही प्रार्थना करता हूं कि वह तुम्हें बल दे और सत्य और स्वतंत्रता के मार्ग पर ले चले। स्वतंत्रता में सत्य का जन्म होता है और सत्य से स्वतन्त्रता आती है।

साहस—अदम्य साहस और दुस्साहस के बिना सत्य के पथ पर चलना असंभव है। सत्य के अनुसंधान में सदा स्वयं के अंतःकरण पर दृष्टि रखनी आवश्यक है। समाज विचारणीय नहीं है। भीतर जो स्पष्टतया मार्ग प्रतीत हो, वही मार्ग है। किसी भी मूल्य पर उससे डिगना मंगलदायी नहीं है।

स्मरण रहे कि व्यक्ति अंततः स्वयं को छोड़कर और किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। मेरा प्रेम तुम्हारे लिए प्रार्थनायें बनकर बह रहा है। प्रेम प्रार्थना है क्योंकि उससे पवित्र और कुछ भी नहीं है।

पुनश्चः

विचार परिवर्तन से आसपास चिन्ता है।

यह स्वाभाविक है। लेकिन उससे स्वयं चिन्तित मत होना, वरन् प्रसन्न होना। उसे शुभ मानना। अस्पताल में जब कोई व्यक्ति स्वस्थ होने लगता है, तो दूसरे अस्वस्थ व्यक्ति उसका स्वागत नहीं कर पाते हैं। न ही कारागृह से छूटते कैदी से अन्य कैदियों को आनंद होता है फिर विचार की रुग्णता तो और भी गहरी है और विचार के कारागृह की दीवारें तो और भी मजबूत हैं ! दासों ने स्वतंत्र-आत्म-चेता व्यक्तियों को कभी भी पसंद नहीं किया है। उनकी उपस्थिति मात्र उनके लिए अपमान और आत्मग्लानि बन जाती है। छोटे व्यक्तियों के बीच, इसलिए, बड़ा होना बड़ी जोखिम का काम है।

मेरे लिए भी तुमने चिन्ता की है। उसमें झलक आए प्रेम को मैंने अनुग्रह से स्वीकार किया है। लेकिन, मेरे सम्बन्ध में कोई कैसी धारणा बनाता है, इसकी फिक्र मैंने ही कभी नहीं की तो तुम तो करना ही नहीं। मैं औरों से मुक्त हूं। उनका आदर-अनादर, उनकी प्रशंसा-निंदा कुछ भी मुझ तक नहीं पहुंचती है। और इसीलिए तो आनंदित हूं। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मेरे लिए नहीं है।

xxxx

"मेरा संदेश छोटा सा है : प्रेम और प्रेम और प्रेम।"

जबलपुर में आयोजित
"आचार्य श्री रजनीश अभिनंदन समारोह" के अवसर पर
शिव द्वारा दिया हुआ भाषण

दुनिया में कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका अभिनंदन करना आसान नहीं होता । कृष्ण, बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, नानक और मुहम्मद आदि ऐसे ही कुछ लोगों में थे । मैं आचार्य श्री रजनीश को उस श्रेणी का ही एक जीता-जागता पुरुष मानता हूं । इसलिए ही, यद्यपि हम उनका अभिनंदन कर रहे हैं, फिर भी उनका अभिनंदन नहीं कर रहे हैं ।

जिस व्यक्ति के उद्‌घोष हों कि—

"यह मनुष्य का सर्वोच्च सम्मान है कि उसे सत्य स्वयं के श्रम से ही मिलता है"

जिस व्यक्ति ने चुनौती दी हो कि—

"किसी दूसरे जैसा बनने की चेष्टा करना आत्म हत्या है ।"

जिस व्यक्ति ने आग फूंकी हो कि—

"अनैतिकता गरीब का चुनाव नहीं मजबूरी है उसे नैतिकता की शिक्षा देना अन्याय है, पाप है ।"

जिस व्यक्ति ने हमारी वर्तमान समाज व्यवस्था को इस हद तक ललकारा हो कि —

"ये सड़कों पर चलते हुए दिखाई पड़ने वाले तमाम बच्चे नाजायज हैं जिन्हें कानून व समाज जायज कहता है । जायज बच्चे वे हैं जो नालियों में फेंक दिए जाते हैं क्योंकि वे ही प्रेम के प्रतिफल हैं ।"

जिस व्यक्ति का विवेक चीख पड़ा हो कि—

"कानून भी अंततः शोषण का एक उपाय है क्योंकि वह भी अमीर के पक्ष में हो जाता है ।"

जिस व्यक्ति ने सिंहनाद किया हो कि—

"नेता एक बहुत बड़ी बीमारी है । नेता ही सारी पृथ्वी को खण्डों में विभाजित किए हुए हैं । आदमी जिस दिन समझदार होगा, दुनिया से नेता विदा हो जायेंगे ।"

जिस व्यक्ति की करुणा पुकार उठी हो कि—

"जिस समाज में बेईमानी के लिए पुरस्कार मिलता हो और ईमानदारी के लिए पाप जैसा प्रायश्चित करना पड़ता हो, उस समाज में लोग ईमानदार कैसे हो सकते हैं ? ऐसे समाज को आग लगा देनी है।"

जिस व्यक्ति ने हमारी आत्मा में अपनी यह अनुगूँज भर दी हो कि—

"मेरी बातों को समझने का एक ही अर्थ हो सकता है कि कुछ किया जाय। अगर आप कुछ करते नहीं हैं तो अच्छा होगा कि मेरी बातों को बेकार समझें और कचरे में फेंक दें।"

मेरी दृष्टि में एक ऐसे व्यक्ति का अभिनंदन महज फूल-मालाएं पहना देने से नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति का सही अर्थों में अभिनंदन हुआ उस दिन ही कहा जा सकेगा जिस दिन दुनिया से जात-पांत व राष्ट्र आदि की कल्पित सीमाएं टूटेंगी और हमारी हर चीज का निर्धारण केवल 'प्रेम' करेगा। जिस दिन मनुष्य इतना खुश होगा कि नाच सकेगा, झूम सकेगा, गा सकेगा। जिस दिन दुखी, दरिद्र व परेशान आदमी का मिलना एक विरल (rare) दुर्घटना हो जायगा। उस दिन ही शायद कृष्ण, बुद्ध, महावीर क्राइस्ट, मुहम्मद और नानक भी अभिनंदित कहे जा सकें। अभी तो हम उनके साथ दुर्व्यवहार ही करते हैं। आचार्य जी ने ही कहा है—"जिसे मनुष्य में ही परमात्मा नहीं दिखता, उसे पत्थर में क्या दिखेगा ? तो अभी तो हम पत्थर के परमात्माओं के लिए जिन्दा परमात्माओं का खून-खराबा ही करते है। नहीं, अभी उनके अभिनंदन का दिन नहीं आया है। वह आये, इसके लिए अभी तो हमें श्रम करना है। आचार्य जी के करुणा में डूबे आग से जलते हुए स्वर हमारी चेतना को उस श्रम के लिए आन्दोलित व उत्प्रेरित करते रहेंगे, इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

इन तमाम बातों के बावजूद, हम जबलपुर वासियों को एक गौरव मुफ्त में मिला है और वह यह कि आचार्य जी हमारे ही नगर से हैं। अपने इस सौभाग्य के लिए हम कितने खुश हैं और परमात्मा के प्रति कितने अनुग्रह से भरे·····, कह पाना कठिन है।

और अंतिम बात : कि मैं उन्हें बिदा भी नहीं कर रहा हूं। क्योंकि, क्या उन्हें बिदा किया जाना संभव है ?

(अभी पिछले २७-२८ जून को पूज्य आचार्य श्री के सम्मान में—आचार्य श्री के बंबई जाने के अवसर पर—सभी वर्गों की ओर से आचार्य श्री का जबलपुर नगर में अभिनन्दन किया गया, उसी अवसर पर श्री शिव द्वारा प्रस्तुत एक अन्तर्विश्लेषण।)

●●●

युक्रांद के लिए विशेष रिपोर्ट :

नारगोल साधना शिविर

आचार्य श्री रजनीश के तीन सूत्र :-

व्यक्ति को शांति	बीज वृक्ष	जीवन परमात्मा को
समाज को क्रांति	हो सकता है	उपलब्ध हो सकता है।

:– मन का कमरा विचारों के फरनीचर से भर गया है।
:– ध्यान परमात्मा को पाने का द्वार है।
:– पत्थर फेंकना हो तो मुझ पर फेंको, साधकों पर नहीं।
:– ध्यानस्थ निवस्त्र साधकों को देखने वाले किस ध्यान में थे ?

प्रस्तुतकर्त्ता : श्री भीकम, जबलपुर

आचार्य रजनीश का नारगोल ध्यान शिविर :

विकास के क्षण पाकर बीज वृक्ष हो सकता है। ध्यान के माध्यम से जीवन भी परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है। परमात्मा को उपलब्ध व्यक्ति का ही चित्त शांत हो सकता है और शांत चित्त व्यक्ति ही समाज में प्रथमबार क्रांति घटित कर सकता है। उक्त विचार हैं देश के मूर्धन्य मनीषी एवं विचारक आचार्य श्री रजनीश के जो उन्होने पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित एक पारसी बस्ती नारगोल में जीवन जागृति केन्द्र बम्बई द्वारा आयोजित एक चार दिवसीय ध्यान शिविर में साधकों के बीच व्यक्त किये। शिविर में आचार्य श्री ने साधकों को प्रभु को-उपलब्ध होने के लिए मार्ग दर्शन दिया। शिविर में करीब ५०० साधक देश के विभिन्न स्थानों से आये थे, जिनके भोजन, तथा आवास की समुचित व्यवस्था नारगोल की नवसर्जन सोसायटी ने की थी।

नारगोल:—

बम्बई के करीब एक सौ पच्चीस मील दूर उत्तर की ओर पश्चिमी समुद्री तट पर सागर की लहरों से क्रीडा करता हुआ यह गांव अत्यन्त मनमोहक एवं रमणीक है। यहां मीलों लम्बे ऊंचे ऊंचे सरू के सघन वृक्ष हैं। सरू वृक्षों की ऊंचाई जैसे जीवन ऊर्जा की ऊंचाई की ओर, और समुद्र की गहराई जीवन के रहस्य को जानने के लिए इशारा करती हो। सरू वन का तीव्र पवन, समुद्र की सतत गर्जना और सरू वृक्षों से छन छन कर गिरने वाली चंद्र सूर्य की रश्मियां साधकों को गहरे ध्यान में चले जाने का चार दिनों तक बार बार प्रेरित करती रहीं।

विचारों का केन्द्र मन : —

मनुष्य का मन तरह तरह के विचारों से भर गया है। वह प्रतिदिन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्रतिस्पर्धी विरोधी विचारों की भीड़ में फंसा रहता है साथ ही उसका चित्त दैनिक उलझनों में इतना ग्रस्त रहता है कि इनसे मुक्त होकर वह कभी भी अपने स्वतंत्र व्यक्ति का निर्माण नहीं कर सकता। वह स्वतंत्र चिंतन तथा विचार करने में भी असमर्थ रहता है उसमें नित्य नये भावों के पुष्प भी नहीं खिल सकते। उसके मन का कमरा विचारों के फरनीचर से भर गया है

वह स्वतंत्र श्वांस भी नहीं ले सकता। अतः आचार्य श्री कहते हैं जो कुछ "है" (परम, चरम या परमात्मा) उसके आगमन के पूर्व भूमिका रूप विचार से निर्विचार अवस्था को पहुँचना है। विचार बाधक बनते हैं क्योंकि उसमें पूर्वाग्रह की प्रेरणा होती है। विचार हर जगह फरनीचर की तरह अवरोध बनकर पड़े हैं। मैं कौन हूं जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न को भी वह जान नहीं पाता। अतः चरम उपलब्धि के लिए निर्विचार होना जरूरी है।

विचार शून्यता के लिए ध्यान :—

विचार शून्यता की स्थिति मानव मन में कब उपस्थित हो सकती है की संभावना पर प्रकाश डालते हुए आचार्य श्री ने ध्यान प्रयोग पर जोर दिया। ध्यान ही वह माध्यम है जब हमें विचारों को भी छोड़ देना पड़ता है। मानव मन का सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए आचार्य जी ने ध्यान को समाधि उपलब्ध होने का एकमात्र उपाय बताया।

ध्यान का अभ्यास :—

शिविर में आचार्य जी ने साधकों को ध्यान करने के तरीकों का अभ्यास करवाया। यह प्रयोग प्रतिदिन सुबह शाम चालीस मिनिट का होता था। पूरे प्रयोग के समय आचार्य जी साधकों को आवश्यक संकेत देते रहते और साधक उनका अनुगमन करते।

ध्यान के आवश्यक चरण :—

ध्यान के प्रथम चरण में समस्त साधकों को खड़े होने का निर्देश देते। अस्वस्थ जन बैठकर भी ध्यान कर सकते थे फिर गहरी श्वांस लेने तथा छोड़ने का निर्देश मिलता। गहरी श्वांसोच्छ्वास की क्रिया से समस्त शरीर एक ऊर्जा से भर जाता। यह क्रिया प्रयोग में सतत् करना पड़ती थी।

द्वितीय चरण में शरीर को पूर्ण स्वतंत्रता देने का निर्देश मिलता। आचार्य श्री कहते यदि शरीर कुछ हरकत करता है तो करने दें। यदि वह नाचता हो तो नाचने दें। यदि वह रोता हो, हंसता हो तो भी उसे वैसा ही करने दें, आप उसके विरोधी न बनें उसके सहयोगी बन जावें। इस अवस्था में साधकों के शरीर विचित्र विचित्र हलचलें करने लगते। कुछ साधक जोर जोर से रोते, कुछ हंसते, कुछ नृत्य करते, कुछ साधक जमीन पर लोट जाते और कुछ साधक शीर्षासन करने लगते। पूरे प्रयोग में निश्चित ही यह क्षण अद्भुत तथा विस्मयकारी होता। देखकर दर्शकों की भीड़ लग जाती। इस अवस्था में हो कुछ साधक निर्वस्त्र हो गये जिस पर पक्ष विपक्ष में भारी प्रतिक्रियाएं हुईं।

ध्यान के तीसरे चरण में जाते ही साधक को सजग रहते हुए "मैं कौन हूं ?" प्रश्न अपने आपसे पूछना होता। ये क्षण भी कौतूहल के होते क्योंकि साधक कभी कभी अपनी वास्तविकता को स्पष्ट कर देते अर्थात प्रश्न के उत्तर में वे हो कहने लगते मैं लोभी हूँ। मैं पापी हूं। मैं चोर हूं। एक साधक को प्रश्न पर पूरा जोर लगाते हुए भी देखा वे कहते बता शाले मैं कौन हूं ?

ध्यान के अंतिम चरण में ले जाते ही आचार्य जी कहते अब शांत पड़े रहें और प्रतीक्षा करें उस क्षण की जब दिव्य प्रकाश से आप भर जायें। यही वह क्षण है जहां साधक चालीस मिनिट के सतत् संघर्ष से जूझता हुआ आचार्य जी के चरणों में कुछ घबड़ाया हुआ सा शांति प्राप्त करने पहुँचता। आचार्य जी ऐसे साधकों के सिर पर शनैः शनैः हाथ रखते और साधक शांत हो जाता।

दर्शकों का कौतूहल :—

प्रायः ध्यान प्रयोग की कौतूहल भरी बातों का प्रचार आस पास हो जाता और दर्शक देखने चले आते। एक खासी भीड़ जमा हो जाती यहां तक की भीड़ कभी कभी प्रयोग में बाधक जैसा लगने लगती।

जब साधकों के द्वारा विभिन्न हलचलें होना शुरू होतीं तो दर्शक बड़ा विस्मय करते। शायद वे

सोचते हों इन्हें क्षणों में ही क्या हो गया है ? अभी ये सब भले चंगे थे अब ये क्या कर रहे हैं ? ये कैसे ठीक होंगे ? दर्शक बड़ी विस्मयता से कभी साधकों को देखते और कभी कभी आचार्य श्री रजनीश को । यह आशा भी करते कि शायद कुछ चमत्कार पूर्ण घटना घटित हो । एक बार जब किसी दर्शक ने अपने साथी को पत्थर फेंक कर मारा तो वह पत्थर मित्र को न लगकर किसी साधक के सिर पर लगा । आचार्य श्री ने यह देख लिया । वे मंच से बोले 'यदि पत्थर मारना हो तो मुझे मारो साधकों को नहीं ।"

जिज्ञासा और उत्तर :—

ध्यान के पूर्व प्रतिदिन आचार्य श्री जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर देते । उनके प्रश्न सामान्यतः सहजयोग, कुन्डलनी या ध्यान से उत्पन्न परिस्थितियों, ईश्वर या परमात्मा के संबध में होते थे ।

मौन साधना :—

शिविर में साधकों को सतत् मौन रहने का निर्देश मिला था लेकिन कुल मिलाकर आठ-दस साधक ही ऐसे देखे गये जिन्होंने लगातार चार दिन मौन रखा हो । फिर भी प्रतिदिन दोपहर तीन से चार बजे तक सामूहिक मौन रखा जाता था इस समय आचार्य जी स्वयं ध्यान-स्थल पर मौन बैठते थे ।

मास हिप्नोटिझम का भ्रमः–

कभी कभी दर्शक आचार्य श्री रजनीश के इस ध्यान प्रयोग को देखकर सामूहिक सम्मोहन [Mass Hypnotism] का भ्रम करते, लेकिन उन्हें ज्ञान होना चाहिए कि आचार्य जी का यह प्रयोग सामूहिक सम्मोहन से बहुत भिन्न है ।

मास हिप्नोटिझम तथा ध्यान में अन्तरः–

[Mass Hypnotism] सामूहिक सम्मोहन तथा ध्यान में नं चे लिखे अन्तर स्पष्ट हैं ।

१—सामूहिक सम्मोहन में सहजयोग, कुन्डली के जागरण को स्थान नहीं नहीं होता जबकि ध्यान में होता है ।

२—सामूहिक सम्मोहन की अनिवार्य शर्त मूर्च्छा [Unconsciousness] है जबकि ध्यान की अनिवार्य शर्त जाग्रति [Awareness] है ।

३—सम्मोहित [Hypnotise] व्यक्ति बेहोश होता है जब वह होश में आता है तो वह यह भी नहीं बता सकता कि क्या हुआ । जबकि ध्यानस्थ व्यक्ति पूर्ण जागरूक होता है और जो भी उसके भीतर होता है उसका साक्षी बना रहता है ।

इसलिए ऐसी भ्रांति अत्यन्त ऊपरी है और सिर्फ उनको ही हो सकती है जो कि न सम्मोहन को जानते हैं और न ही ध्यान को ।

ध्यानावस्था में निर्वस्त्रताः–

इस शिविर में आचार्य जो ध्यान का जब अंतिम अभ्यास करवा रहे थे तो कुछ साधक ध्यान में इतने गहरे गये कि वे निर्वस्त्र हो गये । एक साधक को मैंने स्वयं नग्न होते देखा, वे इतने स्वाभाविक रूपसे नग्न हुए थे कि जिस समय उनके वस्त्र खुल रहे थे उन्हें स्वयं को इसका पता नहीं था । ध्यान के बाद मैंने उनसे पूछा भी तो उन्होंने कहाकि मुझे कुछ ज्ञात नहीं था कि क्या हो रहा है । शारीरिक हलन चलन में हवा के संयोग से उनकी धोती की गांठ खुल गई थी । यह वैसा ही है जैसे हम धोती के छोड़ बांधकर सूखने डाल देते हैं और कभी कभी तेज हवा के कारण ग्रन्थि खुल जाती है और धोती जमीन पर जा गिरती है । ये ध्यानी भी कुछ इन्हीं परिस्थितियों में नग्न हुए थे ।

शिविर में एक अन्य साधक भी थे जो सभा प्रारम्भ होने के पूर्व से ही नग्न होकर बैठ जाते थे । मैंने

इनसे भी पूछा कि आप मात्र ध्यान सभा में आते ही नग्न क्यों हो जाते हैं ? अपने कमरे तथा आते समय भी नग्न क्यों नहीं रहते हैं ? शायद आप नग्न होने का अभ्यास कर रहे हैं । पता है आपको आचार्य जी अभ्यास से नग्नता का निषेध करते हैं क्योंकि काम [Sex] अभ्यास के बाद स्वाभाविक नग्नता नहीं लाता । उन्होंने कुछ संतोषजनक उत्तर नहीं दिया अस्तु ।

निर्वस्त्रता पर प्रतिक्रिया:–

जो साधक ध्यान में नहीं थे उन्होंने निर्वस्त्र साधकों को देखा। वे नाचते थे, रोते थे, और जोर जोर से पूछते थे मैं कौन हूं, मैं कौन हूं उनके चेहरों पर सौम्यता पूर्ण शांति थी फिर भी देखने वालों के मन भय से भर उठे । वे अपनी प्रतिक्रियायें यत्र-तत्र व्यक्त करते भी देखे गये । एक दो को तो कहते सुना गया यह क्या हो रहा है ? ये नग्न हो गये । इन्हें नैतिकता का जरा भी ख्याल नहीं, यहां सैकड़ों महिलाएं हैं फिर भी·····। मुझे लगा कोई काम पीड़ित रुग्ण मस्तिष्क बोल रहा है ।

जब बात आचार्य श्री के समक्ष पहुंची तो उन्होंने कहा "आप ध्यान शिविर में आये थे । आप ध्यान करने बैठे थे, फिर कैसे देखा, क्या आपका ख्याल नग्नता में था ?" भविष्य में ध्यान रखें ध्यानावस्था में जाने के लिए ही शिविर में आवें नग्नता के दर्शन करने नहीं । एक अन्य प्रश्न पर कि यह बुराई है या अच्छाई तो आचार्य श्री ने कहा विधि निषेध मुक्ति की प्रक्रिया की प्राथमिकता को हो ध्यान में रखें ।

अन्तिम सलाह:–

ध्यान के अंतिम प्रवचन में आचार्य श्री ने साधकों को सलाह दी कि वे स्थूल एवं सूक्ष्म अभय अवस्था में निरावरण होकर ध्यान अभ्यास करें। जो साधक स्वानुभव की प्रतीति से आगे बढ़ना चाहता है वह बढ़े । आपके लिए ध्यान प्रयोग का यह पहला चरण ही है इसकी पूर्ण सफलता हेतु सतत् गहरे जाने का अभ्यास करना होगा । आचार्य जी ने कहा वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए हम अभ्यास या प्रयोग करने हेतु समय देने को तत्पर रहते हैं लेकिन ध्यान जैसे प्रयोगों से ही 'क्षण में चमत्कार" जैसी बचकानी जिज्ञासा प्रदर्शित करते हैं। आचार्य जी जीवन और ध्यान साधना ऐसे द्वेत को नहीं मानते । वास्तव में जीवन ही ध्यान और ध्यान ही जीवन बन जाते ऐसे अद्वेत में, ऐसा जागृति में, ऐसे परमात्मा में ही उन्हें विश्वास है । वे अभिव्यक्ति में नहीं अनुभूति में जीने को कहते हैं । वे ध्यान से बुद्धि की अपेक्षा भावना को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं । वे कहते हैं चुम्बन करने वाला कीटाणुओं का विचार करने नहीं रुकता वह तो आनन्द की अनुभूति और प्रत्यानुभूति करता है जो अत्यन्त वैयक्तिक है ।

ध्यान से लाभ:–

ध्यान के सतत प्रभ्यास से अनेक लाभ साधकों को मिल सकते हैं, जिनमें से कुछ नीचे लिखे लाभ सम्भावित हैं ।

(१) ध्यान से मानसिक बीमारियाँ दूर हो जाती हैं ।

(२) ध्यान से विक्षिप्तता, मानसिक तनाव, दमा तथा आज की सबसे बड़ी बीमारी अनिद्रा के लिये रामबाण की तरह लाभकर है ।

(३) ध्यान से व्यक्तित्व की जो भी अवरुद्ध सम्भावनायें हैं, उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है ।

(४) ध्यान से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति का पूरा पूरा उपयोग शुरू हो जाता है ।

(५) ध्यान से पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है जिससे इस जन्म में पिछले जन्म में सीखी हुई समस्त बातों को पुनः सीखने का समय नहीं देना पड़ेगा ।

(६) ध्यान से प्रत्येक कार्य का फल प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगता है जिससे व्यक्तिगत आचरण में परिवर्तन प्रारंभ हो जाता है ।

(७) ध्यान से आगामी जीवन के लिये अपनी सूझ बूझ से योनि (जाति) चुन सकते हैं ।

(८) पूर्ण ध्यान से साधक समाधि को उपलब्ध हो सकता है जहाँ उसकी सारी समस्यायें ही समाप्त हो जाती हैं ।

आचार्य जी ने मुक्ति प्राप्त करने के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि मुक्ति कलयुग में भी संभव है इसके लिये केवल सम्यक् साधन का बोध चाहिये ।

***

ध्यान : कुछ न करना

(आचार्य श्री की सृजनात्मक अभिव्यक्ति)

जैसे आकाश शून्य है, ऐसे ही शून्य होना है ।
भीतर भी आकाश चाहिए ।
लेकिन, वहाँ हम भरे हैं ।
वह भरापन ही बाधा है ।
इसलिए कहता हूं; खाली हो, रिक्त हो, शून्य बनो ।
क्योंकि शून्यता ही पूर्णता के लिए द्वार है ।
खोलो द्वार और देखो कि द्वार पर कौन खड़ा है ?
प्रभु वहाँ सदा से प्रतीक्षा करते हैं ।
लेकिन हम हैं अपने में व्यस्त ।
छोड़ो स्वयँ को ।
जागो स्वयं से ।
और फिर वह अतिथि क्षण भर भी बाहर नहीं रुकता है ।
अव्यस्तता में ही उसका आगमन है ।
इसलिए, अव्यस्त चित्त को ही मैं ध्यान कहता हूं ।
ध्यान में होना अर्थात कुछ न करना ।
ध्यान अर्थात् न करने में होना ।
और फिर उस न करने में ही सब कुछ हो जाता है ।

'पदार्थ' और 'मैं'--अग्नि की दीप्ति में

(माथेरान साधना शिविर में दिया गया आचार्य श्री का उद्‌बोधन)

संकलन : श्री कन्हैया, जालना

जीवन में दो भ्रम हैं। दोनों ही बहुत सत्य मालूम होते हैं। एक भ्रम तो पदार्थ का है, मैटर का और दूसरा भ्रम अहंकार का है, इगो का। एक भ्रम बाहर है, एक भ्रम भीतर है। दोनों भ्रम एक साथ ही जीते हैं और एक साथ ही मरते हैं। वे एक ही भ्रम के दो छोर हैं। पदार्थ दिखायी पड़ता है और ख्याल में भी नहीं आता कि ऐसा भी हो सकता है कि पदार्थ न हो। बहुत ठोस मालूम होता है। पदार्थ कितना ठोस है ?

एक बहुत बड़ा विचारक जान्सन, वर्कले के साथ घूमने निकला था और वर्कले कहता था बाहर जो भी दिखायी पड़ता है सब भ्रम है। तो जान्सन ने पत्थर उठाकर वर्कले के पैर पर पटक दिया। वर्कले पैर पकड़ कर बैठ गया है। बहुत चोट लग गयी है, खून बहने लगा है। जान्सन ने कहा यह पत्थर भ्रम है जिससे चोट लगी ? शायद जान्सन ने सोचा होगा कि उसने बहुत बड़ी दलील दे दी है पत्थर के पक्ष में। लेकिन पत्थर भ्रम है। अब तो विज्ञान कहता है कि मैटर है ही नहीं, पदार्थ नहीं है।

बहुत पहले कुछ लोगों ने कहा था, पदार्थ माया है तब हँसी योग्य बात मालूम हुई होगी। पदार्थ और माया ? 'पदार्थ ही तो सत्य है। जो दिखायी पड़ता है वही तो सत्य है और शौक से हम कहते हैं जो दिखायी पड़ता है वही सत्य है। जो दिखायी नहीं पड़ता वह सत्य कैसे हो सकता है ? अब विज्ञान कहता है कि जो दिखायी पड़ता है वह बिल्कुल सत्य नहीं है। पदार्थ है उसका ठोसपन। उसका होना अभी असत्य है। लेकिन कैसे हम मानें, पदार्थ पैर पर गिरता है तो चोट लगती है, दीवाल से निकलने की कोशिश करें तो सिर टूट जाता है। इस दीवाल को सत्य न कहें, न मानें, जिससे सिर टूट जाता है ? सिर जरूर टूट जाता है फिर भी दीवाल जैसी दिखायी पड़ती है वैसी नहीं है। हमें जो दिखायी पड़ रहा है बाहर का जगत, यह वृक्ष, आकाश में सूरज, यह पृथ्वी, यह पत्थर यह चारों तरफ जो फैलाव है इस फैलाव में जो हमें दिखाई पड़ता है एक ठोसपन। एक पदार्थ, एक मैटीरियल लेकिन जैसे गहरी खोज की गयी और पदार्थ तोड़ा गया तो पता चला वहां कुछ ऊर्जा है, इनर्जी है, शक्ति है, पदार्थ नहीं है। पदार्थ अणुओं का जोड़ है और अणु पदार्थ नहीं है। पदार्थ परमाणुओं का संग्रह है और परमाणु केवल ऊर्जा के कण हैं, शक्ति के कण हैं। पदार्थ दिखाई कैसे पड़ता है ? पदार्थ दिखायी पड़ता है ऊर्जा के आने की तीव्र गति से, स्पीड से। एक पंखा है, इनमें तीन पंखुड़ियां हैं। पंखा रुका हुआ है तो तीन पंखुड़ियां दिखायी पड़ती हैं। पंखा तेज चलता है सिर्फ पंखुड़ियां तीन नहीं दिखायी पड़ती हैं, सिर्फ बीच की खाली जगह दिखायी पड़ती है, फिर पूरा घूमता हुआ वृत्त मालूम होता है। अगर बहुत तेज चले पंखा तो हमें दिखायी पड़ेगा कि तीनों का एक गोल घेरा घूम रहा है जो कि नहीं है। बीच की खाली जगह दिखनी बन्द हो जायेगी। तीव्र गति, पदार्थ के जो अणु हैं, ऊर्जा के जो अणु हैं वे इतने तीव्र गति से घूम रहे हैं कि उनके तीव्र गति से घूमने के कारण ठोस होने का भ्रम पैदा हो रहा है। उनके बीच की खाली जगह

दिखायी नहीं पड़ती। खाली जगह ठोस हो जाती है। वे इतना तेजी से घूम रहे हैं, उनकी गति बहुत तीव्र है, उतनी ही जितनी सूरज के किरणों की गति है। सूरज की किरणें एक सैकेंड में एक लाख ८६ हजार मील चलती हैं। एक सेकेंड में एक लाख ८६ हजार मील की सीधी गति है सूरज की किरणों की और जो अणु छोटी सी जगह में उसी गति से घूमता है वे एक सेकेंड में कितने चक्कर लगा लेते होंगे एक लाख छियासी हजार मील सेकेंड की गति से। और अणु इतने छोटे हैं कि अगर हम अपने बाल के किनारे परमाणुओं को खड़ा करें तो एक बाल की मोटाई में एक लाख परमाणु सीधे खडे हो जायेंगे। इतने छोटे परमाणु हैं, इतनी छोटी उनकी परिधि है घूमने की और परिधि के घूमने की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड है, इसलिए ठोस दिखायी पड़ती हैं चीजें। कोई चीज ठोस नहीं है। सब पदार्थ बिल्कुल भ्रम है।

एक भ्रम बाहर है और दूसरा इसी भ्रम का छोर भीतर है। भीतर दिखायी पड़ता है कि 'मैं हूं', इगो। यह मैं हूं, बिल्कुल झूठा है, यह मैं भी एकदम माया है, यह मैं भी एकदम इल्यूजन है। लेकिन आप कहेंगे पदार्थ ऊर्जा का परिभ्रमण है लेकिन यह 'मैं' कैसे झूठा है? मेरा जन्म नहीं हुआ? मैं बच्चा नहीं था? मैंने शिक्षा नहीं ली? बड़ा नहीं हुआ? मैं आज जवान नहीं हूं? मैं कभी बीमार नहीं पड़ता हूं, कभी स्वस्थ होता हूं। फिर अगर मैं नहीं हूं तो यह सब कहां होता है? किस पर होता है, ये चारों अनुभव किस पर गुजरते हैं? मैं हूं। मेरी प्रतिष्ठा है, मेरा मान है, मेरा सम्मान है, मेरा ज्ञान है, मेरा त्याग है, मैं नहीं हूं? अगर मैं ही नहीं हूं तो फिर सब मिट गया। एक मैं के भीतर भी अगर हम प्रवेश करें जैसे वैज्ञानिक ने परमाणु के भीतर प्रवेश किया, पदार्थ के भीतर और उसने कहा, पदार्थ नहीं है ऐसे ही अगर कोई व्यक्ति 'मैं' के भीतर प्रवेश करेगा और 'मैं' के परमाणुओं को जाने तो उसे पता चलेगा कि मैं भी एक भ्रम है। मैं के परमाणु सब हैं। जैसे पदार्थ के परमाणु हैं वैसे ही मैं के परमाणु हैं अनुभवके कण। यह अनुभव के कण इकट्ठे हो रहे हैं और तेजी से घूम रहे हैं। इसकी गति के कारण यह शक पैदा होता है, यह लगता है कि मैं हूं। जैसे कोई एक मसाल जला ले और तेजी से मसाल को घुमायें तो एक फायर सर्किल बन जायेगा। दिखायी पड़ने लगेगा एक अग्नि का गोल घेरा, जो है नहीं कहीं भी। सिर्फ एक मसाल घूम रहा है और एक वृत्त बन रहा है। मसाल नहीं दिखेगा, सिर्फ एक वृत्त दिखायी पड़ेगा। मसाल बुझ जाय तो दिखायी पड़ेगा वृत्त झूठा था, वह फायर सर्किल झूठा था, वह अग्नि वृत्त नहीं था सिर्फ एक मसाल तेजी से घूमता है। जब कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश करेगा तो पता चलेगा उसके अनुभव के कण, स्मृति के कण जो हो चुके हैं उसके कण इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि इन तेजी से घूमते हुये कणों के कारण एक सर्किल पैदा होता है, एक वृत्त पैदा होता है, इगो सर्किल पैदा होता है और लगता है कि मैं हूं। यह मैं हूं लगता है इसलिए कि हम कहते हैं मेरा जन्म हुआ। लेकिन सच बात यह है कि मेरा जन्म नहीं हुआ। जन्म हुआ मेरा आपका? आपको पता है, आपका जन्म कब हुआ? जन्म हुआ, आप बड़े हुए लेकिन आप कहते हैं मैं बड़ा हुआ। बड़े हुए, बड़े होने की क्रिया हुई, बीमारी आयी। लेकिन हम प्रत्येक घटना के साथ जोड़ते हैं कि मैं बीमार हुआ, मुझे भूख लगी, मैं स्वस्थ हुआ, मैं गया। लेकिन हम एक-एक अनुभव के भीतर प्रवेश करें तो पता चलेगा कि घटनायें घटीं लेकिन हमारी सारी भाषा भ्रांत है। हम कहते हैं आकाश में बिजली चमकी। भाषा से ऐसी भूल पैदा होती है कि बिजली कोई अलग चीज है और चमकना कोई अलग चीज है। बिजली चमकी। हम कहते हैं बिजली है, जो चमकी। लेकिन वैज्ञानिक कहेगा बिजली चमकी यह गलत है। चमकने का नाम बिजली है। बिजली कभी नहीं चमकी। जब चमकी है उसी को हीं हम बिजली कहते हैं। चमकना और बिजली एक ही चीज के दो नाम हैं। दो चीजें नहीं हैं कि बिजली कहीं अलग है और चमकना कहीं अलग है। आप कहते हैं कि मैं गया, अगर भीतर प्रवेश करेंगे तो पायेंगे जाना हुआ है। मैं नहीं गया हूं। मैं और जाना एक ही चीज के

दो नाम हैं लेकिन हमारी भाषा कहती है कि मैं गया। हम कहते हैं मुझे प्यास लगी। सच बात यह है कि प्यास लगी और प्यास लगते वक्त मैं और प्यास दो चीजें नहीं थे। मैं ही प्यास था लेकिन भाषा दो में कर देती है। वह कहती है मुझे दुख हो रहा है। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो सिर्फ दुख हो रहा है। दुख हो रहा है यही नहीं है लेकिन भाषा दो हिस्से में तोड़ देती है। भाषा कहती है मुझे दुख हो रहा है। भाषा का जो हमारा मजमान है उसमें मैं निमज्जित होता चला जाता है। मैं कहीं भी नहीं हूं लेकिन यह निर्माण बचपन से लेकर जीवन भर चलता है और एक मैं का इलूजन एक असत्य धीरे-धीरे पुंजीभूत हो जाता है, खड़ा हो जाता है, ठोस हो जाता है और इसी ठोस मैं का बोझ हमारे ऊपर सर्वाधिक है।

मैंने दो बोझों की बात की है आपसे, अतीत का बोझ और भविष्य का बोझ, और अंतिम बोझ मैं का बोझ, अहंकार का बोझ जबतक चित्त पर है तबतक हम सत्य में प्रवेश नहीं पा सकते क्योंकि यह है असत्य, यह है झूठा। कभी अपने भीतर प्रवेश करें। अब हमारी सारी भाषा गड़बड़ है जब हम कहेंगे अपने भीतर तो वह मैं मजबूत हो रहा है। कहना चाहिए भीतर लेकिन भीतर से भी मैं मजबूत होता है और लगता है भीतर मैं हूं और मैं नहीं हूं और सचाई यह है कि बाहर और भीतर दोनों सब झूठा है। ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि कुछ बाहर और कुछ भीतर है। एक ही चीज फैलती है बाहर और भीतर। बाहर और भीतर दो चीजें नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही चीज के फैलाव हैं, एक ही चीज का एक्सटेंशन है। वही भीतर है, वही बाहर है। लेकिन हमारे देखने में ऐसा लगता है कि भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। हम कहते हैं बाहर कुछ भी नहीं है भीतर सब कुछ है। हम कहते हैं बाहर छोड़ो भीतर आओ। उस सबसे मैं मजबूत होता है लेकिन बहुत गौर से देखें, क्या है बाहर, क्या है भीतर? कोई भी चीज भीतर है, कोई भी चीज बाहर है। श्वांस भीतर है कि बाहर? श्वांस बाहर भी जाती है और भीतर भी। श्वांस कहां है? श्वांस बाहर भीतर का जोड़ है' सेतु है। यह सूरज तुमसे बाहर है या भीतर? सूरज की गर्मी हमें भीतर पूरे वक्त मिल रही है, हम इसीसे जी रहे हैं। सूरज बाहर हो या भीतर, सूरज मेरा हिस्सा है, न मुझसे अलग है। अगर सूरज बुझ जाय तो मैं भी बुझ जाऊंगा कि नहीं बुझ जाऊंगा। अगर सूरज बुझ जाय, हम सब यहीं बुझ जायेंगे। तो फिर सूरज बाहर था या भीतर था? यह वृक्ष बाहर है कि भीतर? हम कहेंगे कि वृक्ष हमसे बाहर है। वृक्ष बाहर दिखायी पड़ गये हैं। दिखायी पड़ गये हैं यह सच है लेकिन आपने ख्याल किया, गेहूं आप कहाँ से ले आये? वृक्षों से। भोजन कहां से ले आये? वृक्षों से। वृक्ष पूरे वक्त आपके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। आप मिट्टी नहीं खा सकते हैं लेकिन गेहूं बो देते हैं। गेहूं मिट्टी खाता है। पौधा बड़ा होता है, एक गेहूं की जगह हजार गेहूं लग जाते हैं। वह सब मिट्टी से खींचा है उस गेहूं ने। उस गेहूं ने सूरज की किरणें पी ली हैं, उस गेहूं में वह सारी प्रक्रिया हो गयी कि अब वह प्रक्रिया के द्वारा गेहूं आपके शरीर का हिस्सा बन सकता है। अब यह गेहूं आपके भीतर जायगा, आपका खून बनेगा, आपकी हड्डी बनेगी, आपका मांस बनेगा। अगर सारे पौधे भोजन बनाने बन्द कर दें तो आप एक क्षण भी जियेंगे? आप इसी क्षण विदा हो जायेंगे। तो पौधे आपके बाहर हैं या भीतर? या उसी जीवन की बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा है। वही जीवन की प्रक्रिया एक तरफ गेहूं पैदा कर रही है और एक तरफ आपको पैदा कर रही है। फिर वही गेहूं आपका पोषण दे रहा है और कल आप गिर जायेंगे और मिट्टी में मिल जायेंगे। तो आप मिट्टी और आप अलग-अलग हैं? उसी मिट्टी से पैदा होते हैं, उसी मिट्टी में विदा हो जाते हैं, उसी मिट्टी से जीते हैं, फिर वही मिट्टी बन जाते हैं। कितनी बार पौधे बन चुके हैं आप, और कितनी बार पौधे आदमी बन चुके हैं और कितनी बार आदमी फिर मिट्टी बन चुका है फिर पौधा बन चुका। यह किसी एक ही वृत्त के हिस्से हैं या अलग-अलग? क्या है बाहर, क्या है भीतर? जो बाहर है वह प्रतिक्षण भीतर जा रहा है, जो भीतर है वह प्रतिक्षण बाहर जा रहा है।

बाहर भीतर एक ही जीवन ऊर्जा की लहरें हैं। जब भीतर की तरफ लहर आती है तो हम कहते हैं मैं, और जब बाहर की तरफ जाती है तो हम कहते हैं तू। लेकिन तू और मैं एक ही जीवन ऊर्जा के लहर के दो छोर हैं। यह दिखायी पड़ना जरूरी है, यह मेरा भ्रम है, यह भीतर का भाव ही भ्रम है और जबतक यह दिखायी न पड़ जाय तबतक बोझ से मुक्ति नहीं हो सकती क्योंकि जब-तक मैं मानता हूं कि मैं हूं पृथक तबतक एक बोझ रहेगा क्योंकि तबतक एक संघर्ष रहेगा। उससे जो मैं नहीं है। मैं का संघर्ष है मैं से, आई का संघर्ष है नाट आई से। जबतक मैं, मैं हूं, तू, तू है तबतक सघर्ष जारी रहेगा। जबतक वृक्ष अलग है, मैं अलग हूं तबतक एक अंतर्द्वन्द जारी रहेगा। वह अंतर्द्वन्द ही मनुष्य के ऊपर सबसे बड़ा बोझ है क्योंकि संघर्ष में शांति कहां, द्वन्द में शांति कहां। हम लड़ रहे हैं प्रतिक्षण, सबसे लड रहे हैं, चारों तरफ लड़ रहे हैं और लड़ने का यह बिल्कुल भ्रम है कि मैं अलग हूं। अगर यह ज्ञात हो जाय कि मैं अलग नहीं हूं, मैं इसी विराट जीवन प्रक्रिया का एक अंग हूं तो किससे है लड़ना, किससे है संघर्ष, कौन है शत्रु? यह सारा विराट जीवन एक है। ऐसा ही समझें कि अगर मेरे हाथ को ख्याल पैदा हो जाय कि मैं अलग हूं और मेरी आंख को ख्याल पैदा हो जाय कि मैं अलग हूं और आंख लड़ने लगे हाथ से, पेट लड़ने लगे सिर से, हाथ लड़ने लगे पैर से तो क्या गति होगी उस व्यक्ति की? सारा विघटित हो जायगा सारा व्यक्तित्व अंतर्द्वन्द और संघर्ष में नष्ट हो जायगा। सारा व्यक्तित्व एक कलह बन जायगा फिर जीवन आनन्द नहीं हो सकता। लेकिन नहीं आंख जुड़ी हुई है पैर से, हाथ जुड़ा हुआ है सिर से, पेट जुड़ा है, सिर्फ जुड़ा है और सबके भीतर एक सहयोग, एक को—आपरेशन, एक अंतर्संबंध है। भीतर सब एक है। आंख और पैर का अंगूठा अलग—अलग नहीं, दोनों एक ही जीवन प्रक्रिया के हिस्से हैं। गौर से देखेंगे, समझेंगे, पहचानेंगे, समझेंगे तो समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया मालूम होगी। और जिस दिन ऐसा मालूम होता है कि समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया है उसी दिन ईश्वर का अनुभव हो जाता है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है। ईश्वर का अर्थ है सब एक है, ईश्वर का अर्थ है अनेक नहीं है, ईश्वर का अर्थ है खंड-खंड नहीं है, सब अखंड है और सब अखंड इकट्ठा जीवन है। लेकिन हमने उस अखंड से अपने को अलग तोड़ा हुआ है और भक्त भी कहता है, मैं अलग हूं। भक्त कहता है, हे भगवान, मुझपर दया करना। वह कहता है कि मैं अलग हूं। ईश्वर दया करने वाला है, मैं दया पाने वाला हूं। तू पतित पावन है, मैं पतित हूं। भक्त भी कहता है कि मेरा उद्धार करना। किससे कह रहे हो? किससे मांग रहे हो? तुम जिससे भीख मांग रहे हो वही हो। वहां कोई भी नहीं है और सुनने को। क्योंकि मांगने वाला ही पाने वाला है, देने वाला ही लेने वाला है। वहां दो नहीं है। लेकिन सारे भक्त हाथ जोड़े हैं किसके सामने? और मैं कहता हूं सारे भक्त नास्तिक हैं। किसी भक्त को ईश्वर का कोई पता नहीं है। किससे हाथ जोड़ रहे हो? हाथ जोड़ने का मतलब है कि कोई दूसरा है और जहां दूसरा है वहीं सब उपद्रव शुरू हो गया है। वहां हमने तोड़ लिया है अपने को।

किससे कर रहे हो प्रार्थना? किसके चरणों में हाथ जोड़ के सिर टेक रहे हो? कौन है वहां दूसरा? कोई भी नहीं है। जीवन एक अंतहीन विस्तार है एक ही ऊर्जा का, एक ही जीवन शक्ति का। लेकिन भक्त भी कहता है कि भगवान अलग है, भगवान को पाने की मैं कोशिश कर रहा हूं। भगवान को पाने की कोशिश भ्रम है। भ्रम इसलिए है कि भगवान को पाने की कोशिश में यह निर्णय हुआ है कि मैं हूं और मैं भगवान को पाऊंगा। नहीं, धर्म नहीं मानता, नहीं जानता ऐसा कि कोई और है। धर्म का ज्ञान, धर्म का जानना यह है कि मैं नहीं हूं और तब सब एक हो जाता है। फिर कुछ तो करनी है प्रार्थना? फिर अपने ही हाथ को अपने ही सिर पर जोड़े हुए हैं अपने ही पैर पर अपने ही सिर रखे हुए हैं? सारी प्रार्थना, सारी पूजा, सारी अर्चना एक गभीर मूढ़तापूर्ण है क्योंकि किससे कर रहे हैं यह? वह जो मौलिक भ्रम है, वह जो मौलिक इलूजन वह कायम है कि दूसरा अलग है और मैं अलग हूं, भीतर यह जो छोर है

बाहर का उसमें प्रवेश करके खोजें मैं हूं। जायें और खोजें कि मैं हूं और एक-एक जगह पूछें कि मैं यह हूं, मैं शरीर हूं। हम कहेंगे साधक पूछते हैं। साधक पूछते हैं मैं शरीर हूं? और उसका उत्तर तैयार है कि मैं शरीर नहीं हूं। वह उत्तर कहीं से आता नहीं, वह किताब से पढ़ा हुआ है। उत्तर पहले से मालूम है पूछता है पीछे। पूछना झूठा है। उत्तर पहले से मालूम है, पूछना पीछे है। पूछना झूठा है। उत्तर पहले से मालूम है जैसे कि बच्चे नकल करते हैं। गणित करने के पहले किताबें उठाकर देख लेते हैं उत्तर क्या है। उत्तर पहले से मालूम है, फिर गणित कर रहे हैं। ऐसे ही धार्मिक लोग करते हैं। उत्तर पहले से पता है कि हम आत्मा हैं फिर अपने से पूछ रहे हैं कि मैं शरीर हूं और खुद ही कह रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। क्या पागलपन है? किससे पूछ रहे हो, किसको उत्तर दे रहे हो? और जब पूछना ही शुरू किया है तो अंत तक पूछो, फिर इतनी जल्दी मत रुक जाओ। फिर पूछो कि मैं शरीर हूं? और उत्तर किताब से निकलता है क्योंकि किताब से आया हुआ उत्तर आपके लिए झूठा होगा, किसी के लिए सत्य होगा जिसे मिला था। आपको किताब से मिला है। आपको नहीं आया है आपसे। पूछा है, शरीर हूं। पूछो मैं मन हूं? लेकिन यहीं मत रुक जाओ। रुक जाता है जो, वह पूछता ही नहीं। सिर्फ यह भी पूछो, मैं आत्मा हूं और हर जगह उत्तर मिलेगा, नहीं। शरीर पर भी मिलेगा मन पर भी मिलेगा, आत्मा पर भी मिलेगा। असल में जो हम पूछ सकते हैं वहीं उत्तर मिलेगा यह मैं नहीं हूं। पूछते चले जाओ, खोजते चले जाओ और अंत में पाओगे कि मैं हूं ही नहीं। उत्तर मिलेगा ही नहीं। अंततः पता चलेगा मैं हूं ही नहीं, सब है, मैं नहीं हूं। जैसे कोई प्याज को छीलना शुरू करे, एक पर्त निकाल ले। पूछे अब प्याज कहां है? यह पर्त प्याज नहीं है, फेंक दो, दूसरा पर्त निकाल लें। दूसरी पर्त प्याज नहीं है और प्याज और प्याज और खोजता चला जाय और एक-एक पर्त को फेंकता चला जाय। आखिर में क्या मिलेगा? आखिर में शून्य मिलेगा और पता चलेगा प्याज है ही नहीं, सब पर्त ही पर्त थी। ऐसे ही अलग कोई खोजते चला जाय तो पर्त ही पर्त मिलेंगी और मैं कहीं भी नहीं मिलेगा। अंततः सब पर्तें शांत हो जायेंगी और मैं का भाव भी शांत हो जायगा। लेकिन जहां मैं शांत हो जाता है वहां मैं तो नहीं मिलता है, सब मिल जाता है। पूछो, मैं कौन हूं? और आखीर में पता चले मैं हूं ही नहीं और तब जिसका पता चलेगा वही है। उसका ही नाम सत्य है, उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन जो कहता है आत्मा हूं वह परमात्मा को कभी नहीं जान पाता क्योंकि वह यह मानकर चल रहा है कि मैं हूं। वह जिसको हम आत्मवादी कहते हैं, वह भी परमात्मावादी नहीं है क्योंकि आत्मावादी कहता है मैं हूं और यह जिद उसकी कायम है कि मैं अलग हूं। वह कहता है कि मुझे मोक्ष चाहिए और वह कहता है कि मोक्ष में भी मैं रहूंगा। सब छोड़ने को राजी हो जाता हैं आत्मवादी लेकिन मैं को छोड़ने को राजी नहीं है। वह कहता है धन मैं छोड़ दूंगा, वह कहता है पत्नी बच्चे मैं छोड़ दूंगा, वह कहता है संसार मैं छोड दूंगा, मर जाऊंगा लेकिन वह यह कहता है कि मैं को नहीं छोड़ूंगा। मैं को मैं रखूंगा। मैं मोक्ष में रहूंगा। मैं आनन्द को, मोक्ष को अनुभव करूंगा। लेकिन मैं? मैं बचूंगा। लेकिन बड़े मजे की बात है, असली संपत्ति मैं है, धन असली संपत्ति नहीं है और धन में जो मजा है वह मैं के मजबूत होने का मजा है और कोई मजा नहीं है। मेरे पास कुछ है इसका जो मजा है वह उसके मैं को मजबूत करने का मजा है। आपके पास एक बड़ा मकान है तो उसी अनुपात में आपके पास एक बड़ा मैं होगा। छोटा मकान है, मैं छोटा हो जायगा। छोटे मकान से तकलीफ नहीं होती, तकलीफ मैं के छोटे हो जाने से होती है। अगर आप एक बड़ी कुर्सी पर सवार हैं तो आपके पास एक बड़ा मैं है। कुर्सी से नीचे उतरे, मैं छोटा हो गया। तकलीफ कुर्सी से नहीं होती है। बड़े तख्त पर बैठने से कौन सा सुख मिलता होगा? लेकिन बड़े तख्त पर बैठने से मैं बड़ा हो जाता है। वह मैं बिल्कुल काल्पनिक है, बड़े तख्त का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है। बड़े धन का सहारा लेकर बडा हो जाता है, बडे पद का सहारा लेकर बड़ा होता है और हम कहते हैं पद छोड़ दो लेकिन वह मैं बहुत होशियार है। वह

छोड़ने से भी बड़ा हो जाता है। वह कहता है, मैंने धन छोड़ दिया, देखा मैंने मिनिस्टरी को लात मार दी, मैंने पद छोड़ दिया, मैंने सब छोड़ दिया। लेकिन वह मैं कहता है मैंने सब छोड़ दिया। वह फिर नयी शकलों में खड़ा हो जाता है इसलिए धन छोड़ना आसान है क्योंकि धन छोड़ने से मैं मरता नहीं और मजबूत हो जाता है। धन को चोर भी चुरा सकते है लेकिन त्याग को कोई नहीं चुरा सकता इसलिए अगर तिजोरी हो मजबूत बनाना हो तो त्याग की तिजोरी बनानी चाहिए। लोहे की तिजोरी तोड़ी जाती हैं, टूट जाती हैं। चोर भी बहुत होशियार हैं। संन्यासी के भर अहंकार की चोरी नहीं होती, गृहस्थ के अहंकार की चोरी होती है गृहस्थ नासमझ है, सन्यासी होशियार है, ज्यादा कनिंग है, ज्यादा चालाक है। वह ऐसा मैं मजबूत कर रहा है जिसको कोई चुरा नहीं सकता। उसके मैं को आप कैसे चुरा-इएगा। अगर आप उससे कपड़े छीन कर ले जाओगे तो वह कहेगा मैंने कपड़े भी त्याग किये, चलो यह झंझट मिटी, कपड़े अब नहीं रहे। अब हम और भी मुक्त हो गये। अब हम और भी मुक्त हो गये। अब वह मैं और मजबूत हो गया, वह कहता है मैंने कपड़े भी छोड़ दिये। गृहस्थ नासमझ अहंकारी है, सन्यासी समझदार अहंकारी है। इसलिए गृहस्थ की जब नासमझी टूटती है तो वह भी संन्यासी होना शुरू हो जाता है तो समझ में आ जाता है कि हम कहां के पागलपन में पड़े हैं। इसमें कोई सार नहीं। धन चोरी चला जाता है, सरकार बदल जाय, सारा गड़बड़ हो जाता है। कम्युनिज्म आजाय, सब गड़बड़ हो जाता है। सन्यासी से कोई कुछ नहीं छीन सकता है। उसके पास कुछ है नहीं कि छीने। उसके पास शुद्ध मैं बच गया है। जिसके पास कुछ भी नहीं है छोड़ने का लेकिन असली मैं हैं। सवाल मैं के छोड़ने का है, न धन छोड़ने का सवाल है, न मकान छोड़न का, न पद छोड़ने का, सवाल मैं छोड़ने का है लेकिन वह तो मोक्ष की खोज करने वाला भी नहीं छोड़ता। वह कहता है मैं तो रहूंगा, शुद्ध रूप मेरहूंगा। प्राण छूट जायगा लेकिन मैं तो रहूंगा, सब छूट जायगा, मैं रहूंगा।

यह बहुत अद्भुत बात है। जो सबसे ज्यादा भ्रामक है उसी को बचाने की चेष्टा चलती है। नहीं, जब तक मैं है तब तक कुछ नहीं छूटता, जिस दिन मैं छूट जाता है उसी दिन कुछ छूटता है और जिस दिन मैं छूट जाता है उस दिन मोक्ष है। मैं का कोई भी मोक्ष नहीं, मैं से मुक्ति का नाम मोक्ष है। मैं की कोई मुक्ति नहीं होती कि मैं मुक्त हो जाउगा। मुक्त होने से मतलब कि मैं तो मरा मैं तो गया। मुक्ति में कोई मैं नहीं बचा रहता है। मुक्ति का अर्थ है परमात्म जीवन। मैं नहीं रहा, समग्र की सत्ता रह गयी। मैं सबके साथ एक है और एक मैं हूं। मुझे होना नहीं है, सिर्फ जानना है कि सत्य क्या है। क्या मैं अलग हूं? क्या मैं पृथक हूं? क्या पृथक होकर एक क्षण भी जिया जा सकता है? क्या जीवन का पृथक होना संभव है? क्या एक व्यक्ति को हम कैप्सूल में बन्द कर दें, सब तरफ से तोड़ दें, वह जियेगा? एक क्षण भी जियेगा। जीवन अंतर्संबंध है। जीवन विराट अंतर्संबंध है। सोचें एक व्यक्ति को कि हमने बन्द कर दिया है एक वैक्युम कैपसूल में। एक शून्य डब्बे में बन्द कर दिया है। उसका कोई संबंध नहीं रहा दुनिया से। वह एक क्षण भी जी नहीं सकता है। वहां, एक क्षण भी, हो सकता है वहां वह नहीं होगा, नहीं हो सकता, लेकिन हम सबने अहंकार का कैपसूल बनाया हुआ है और अहंकार में हम सब अलग अलग खड़े हो गये हैं और कहते हैं मैं हूं जबकि हम जुड़े हुए हैं लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि मैं हूं अलग और पृथक। जीवन है संयुक्त, अहंकार विमुक्त। अहंकार की खोज करनी जरुरी है कि यह भ्रम तो नहीं, कहीं एकांत में बैठकर देखा है भीतर की तरफ कहां है अहकार, कहां हूं मैं। पूछते चले जायें, यह हूं मैं? और उत्तर आयेगा नहीं। लेकिन एक उत्तर आयेगा नहीं, नहीं यह भी नहीं। लेकिन अगर किताब से उत्तर सीख लिया तो उत्तर आयेगा हां। शरीर तो नहीं हूं लेकिन आत्मा हूं। आत्मा तो नहीं हूं लेकिन परमात्मा हूं। उत्तर अगर सीखा हुआ है तो व्यर्थ हो जायेगा। सिर्फ पूछें इन्क्वारी चाहिए अन्वेषण चाहिए कि यह हूं मैं? और फौरन पता चलेगा कि मैं नहीं हो सकता। हाथ मैं नहीं हो सकता, क्योंकि मैं तो हाथ को जान रहा हूं, पहचानता हूं। शरीर हूं मैं?

शरीर मैं नहीं हो सकता हूं क्योंकि शरीर को मैं पहचानता हूं, शरीर को जानता हूं जिसको मैं जान रहा हूं वही मैं नहीं हो सकता हूं, मैं जानने वाला हूं। फिर तो और पूछें विचारें, हूं मैं। विचारों को भी जान रहा हूं। मन हूं मैं ? मन को भी जान रहा हूं। पूछते चलिये, पूछते चलिये। आत्मा हूं मैं। ? असल में जिसको भी हम पूछ सकते हैं यह हूं मैं, वही हम नहीं होंगे और पूछते पूछते वह घड़ी आयेगी कि पता चलेगा कि अब तो पूछने को कुछ नहीं बचा कि क्या हूं मैं। और उत्तर भी नहीं मिला। उत्तर भी खो जायेगा। पूछने की वृति भी खो जायेगी। साथ ही मैं भी खो जाऊंगा, तब शेष रह जायगी एक अनंत शांति, तब शेष रह जायगा अनंत मौन। न वह प्रश्न है, न वह उत्तर है। तब शेष रह जायेगा अनत विस्तार, तब शेष रह जायेगा जीवन और जीवन का स्पंदन और तब दिखायी पड़ेगा यह वृक्ष भी मैं हूं यह शरीर भी मैं हूं, यह चाँद भी मैं हूं, यह तारा भी मैं हूं। वह जो सामने दूसरी आँखें दिखायी पड़ रही हैं उनसे भी मैं ही झांक रहा हूं, मैं ही बोल रहा हूं और वह जो सुन रहा हूं वह भी मैं हूं मैं ही बोल रहा, दूसरे कोने से मैं ही सुन रहा हूं। वह जिसको मैं प्रेम कर रहा हूं वह भी मैं हूं और वह जो प्रेम कर रहा है वह भी मैं हूं जिस दिन दिखायी पड़ेगा मैं नहीं हूं उसी दिन क्रांति हो जायेगी और दिखायी पड़ेगा मैं नहीं हूं। ये दोनों बातें एक ही अर्थ हैं। चाहे यह कहें मैं नहीं हूं, सब है और चाहे यह कहें कुछ भी नहीं है, मैं ही हूं। ये दोनों एक ही बातें हैं। इन दोनों का एक ही अर्थ है कि जीवन है, जीवन का अंतहीन अनंत विस्तार है, उर्जा का सागर है, एक इनर्जी है जो स्पंदित हो रही है अनंत अनत रूपों में लेकिन एक ही स्पंदन है और जब तक यह बोध स्पष्ट न हो जाय तब तक बोझ से मुक्ति नहीं मिल सकती। अहंकार सबसे बड़ा बोझ है।

लाओत्से के साथ एक आदमी गया और उस आदमी ने पूछा कि मैं मोक्ष चाहता । लाओत्से हँसने लगा। उसने कहा, पागल, तू मोक्ष चाहता है ? उसने कहा, हां मैं मोक्ष चाहता हूं। मैं मोक्ष को कैसे पाऊं ? लाओत्से ने कहा, पहले समझ के आ कि मैं हूं, अगर हो तो मैं मुक्त करने का रस्ता बता दूंगा। और अगर मैं ही है तो किसको मुक्त होने का रास्ता बताऊंगा। वह आदमी वापस गया। वर्षों बाद वापस लौटा है। चरणों पर सिर रख दिया है। लाओत्से ने कहा, खोज लिया मैं ? उस आदमी ने कहा, आपने भी क्या आश्चर्यजनक बात कही। मैं को खोजने गया मैं खो गया। लाओत्से ने कहा, तो मोक्ष का इरादा। उसने कहा, बात खत्म हो गई। मैं ही नहीं हूं तो मुक्त किसको होना है, और जब मैं ही नहीं है तो मुक्त हो गया, मैं ही बन्धन था। लेकिन हम सब मुक्ति खोज रहे हैं। हम कहते हैं मुझे शांत होना है। ध्यान रहे, जब तक मैं है तब तक शांति नहीं हो सकती लेकिन हम पूछते हैं मैं शांत कैसे हो जाऊं। हम पूछते हैं, लोग शांत कैसे हो जायें। यह ऐसे ही है जैसे कैंसर पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं। अगर कैंसर आ जाय और आपसे पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं तो हम उससे कहेंगे इतनी ही तो बीमारी है, कोई स्वस्थ नहीं होता। न रहे तो स्वास्थ्य आजायेगा। कैंसर स्वास्थ्य नहीं हो सकता, कैंसर का न होना स्वास्थ्य होगा। मैं कभी शांत नहीं हो सकता लेकिन हम सब मैं को शांत करने में पड़े हैं। हम कहते हैं, दुनिया से हमें कोई मतलब नहीं। मैं कैसे शांत हो जाऊं। और मैं ही अशांत हूं, मैं ही द्वंद हूं, मैं ही कष्ट हूं, मैं ही बन्धन हूं और हम पूछते हैं मैं मुक्त हो जाऊँ और बताने वाले लोग कहते हैं, वे कहते हैं जप करो, तप करो और मुक्त हो जाओगे और वह मैं कहता हूं अच्छी बात। अब मैं उपवास करूंगा और मैं उपवास करता हूं और उपवास के बाद मैं बाजार में आता हूं, और कहता हूं, मैंने इतना उपवास किये मैंने इतनी जाप की। एक लाख माला फेर चुका हूं। मैंने राम राम लिख कर हजारों किताबें भर दीं।

मैं एक गांव में गया। वहां एक मंदिर बना हुआ है– राममंदिर। उस मंदिर में एक ही काम है। उसमें हजारों पुस्तकें हैं और हर आदमी वहां राम राम जपते रहता है किताबों में और वह किताबें रखते जाते हैं। वह कहता है बस करोड़ों राम नाम और लोग राम राम लिख

कर भेजते रहते हैं और वहां किताबें इकट्ठी होती जाती हैं और हर आदमी हिसाब रखता है कि मैंने कितने लाख राम लिख दिये, मैंने कितने लाख नाम ले लिए, मैंने कितनी मालाएँ फेरीं, मैंने कितने उपवास किये । वह मैं बहुत प्रसन्न होता हूं, वह मैं कहता हूं कि चलो, ठीक है । मैं के करने के नये उपाय मिल गये । यह मैं पहले गिनती करता था कि मेरी तिजोरी में कितने रूपये हैं अब मैं कहता हूं, मेरी तिजोरी में कितने राम हैं, कितने राम मैंने लिख दिये । वह पहले कहता था मेरे पास कितने मंजिल के मकान हैं, अब वह कहता है मेरे पास कितने मंजिल का उपवास है, मैंने कितने उपवास किये मंजिल पर मंजिल । अब वह मैं कहता हूं, मैंने यह छोड़ दिया मैंने यह यह कर लिया, मैंने इतने नमोकार पढ़ डाले, मैंने इतनी नमाज पढ़ ली, मैंने यह किया, मैंने वह किया और वह मैं नये नये मकान बनाना शुरू कर देता है और फिर वह मैं कहता है, मुझे मोक्ष चाहिए मोक्ष कहां है, मोक्ष कैसे मिलेगा । यह बुनियादी भ्रम है जिससे साधक भटक जाता है । मैं भटकता हूं और कोई नहीं भटकता है । फिर वह मैं न जाने कितने उपाय खोजता है । वह मैं को समझना जरूरी है कि जिसे हम शांत करना चाहते हैं कहीं वही तो अशांत नहीं है । कभी आपने ख्याल किया, है ? अगर इस वक्त छूट जाय, कौन सी अशांति है । एक क्षण को सोचा था । कभी सोचा था इसे कि अगर मैं नहीं हूं, इससे क्या अशांति है ? कभी यह भी सोचा कि मेरी अशांति के पैदा होने के, मेरी इगो के अतिरिक्त मैं के अतिरिक्त और कोई कारण है ? एक आदमी ने रास्ते पर नमस्कार भी नहीं किया और मन अशांत हो जाता है । और एक आदमी ने ऐसी आंख से देख दिया कि मन अशांत हो जाता है और बेटे ने आज्ञा नहीं मानी और बाप अशांत हो गया, और पति पत्नी की आज्ञा अनुसार नहीं चला और पत्नी अशांत हो गयी । कभी सोचा कि अशांति का कारण क्या है ? अशांति का कारण पति का मानकर न चलना है ? अशांति का कारण बेटे की बाप की बात न मानना है ? या अशांति का कारण बाप का मैं है ? पत्नी का मैं है, बेटे का मैं है । कौन है अशांति का कारण ? कौन कर रहा अशांत किसको—वह मेरा मैं । वह कहता है, मेरी नहीं मानी, मैं बाप हूं, मैं बाप बना बैठा हूं । तो वह मैं माँ बने बैठा है, वह मैं पति बने बैठा है, वह कहता है मैं । उसने हजार शकलें बना रखीं हैं । जगह जगह पुकार के कह रहा है, उसकी तृप्ति होनी चाहिए, जो मैं कहूं ।

यह जो मैं का सारा का सारा जाल है यही अशांति है । सिर्फ वह अशांति बहुत बढ़ जाती है, जो अशांति बेबोझ हो जाती है । जब अशांति में सहना असंभव हो जाता है, वह असहनीय हो तो वह मैं पूछता है कि शांति कैसे मिले ? फिर वह मैं शांति की तलाश में जाता है, मैं जाता है शांति की खोज में, गुरुओं के चरण पकड़ता है और वह कहता है, हमें शांति का रास्ता बतायें हम शांत होना चाहते हैं, मैं शांत होना चाहता हूं । और गुरू ? उनके पास भी अपना मैं है क्योंकि मैं न हो तो कोई गुरू बनकर बैठेगा ? वह कहेगा, हम शांति देंगे और जो कहता है मैंने शांति दी, उसके बेचारे के पास खुद ही शांति नहीं हो सकती क्योंकि जहां मैं है वहां शांति कैसे हो सकती है । वह कहता है मैं शांति दूंगा । वह अशांत मन उसके आस-पास इकट्ठे होते हैं और सम्प्रदाय खड़े होते हैं, गुरुडम खड़ी होती है, आश्रम खड़े होते हैं, पथ चलते हैं । सब मैं का उपद्रव है । गुरू भी मैं का उपद्रव है, शिष्य भी । और शिष्य बड़े गुरू खोजता है और सिद्ध कर लेना चाहता है कि गुरू पक्का बड़ा है कि नहीं क्योंकि बड़े गुरू के पास बड़े शिष्य का बड़ा मैं मजबूत होता है और लगता है कि मैं कोई साधारण गुरू का चेला नहीं हूं, बड़े गुरू का चेला हूं, बड़ा चेला हूं । इधर मैं मजबूत होता है । अगर उससे कहो कि तुम्हारा महावीर कोई बड़ा गुरू नहीं है, तुम्हारा बुद्ध कोई बड़ा गुरू नहीं है, तुम्हारा महात्मा आधा महात्मा है तो उसको पीड़ा लगती है । उसको पीड़ा इसलिए नहीं लगती है कि महावीर को चोट लगती है । वह कहता है, मेरा गुरू ? मेरा गुरू कमजोर हो गया है, आधा गुरू है ? कभी नहीं हो सकता । मेरा गुरू हमेशा पूरा गुरू है । मेरा गुरू तीर्थंकर है, मेरा गुरू अवतार है, मेरा गुरू भगवान है । तो फिर कहता है, तलवारें चल जायेंगी । बेचारे, महावीर को चले ढाई हजार साल हो गये, मुहम्मद को मरे

१४०० साल हो गये, जीसस को मरे जमाना गुजर गया। उनकी मृत्यु बहुत बड़े राख में मिल गयी, वह बहुत पहले खो चुके, उसमें जो सबमें है लेकिन तलवार चलाने वाला पीछे खड़ा है। कहता है हम तलवार चला देंगे अगर मुहम्मद को कुछ कहा। क्यों है? तुम्हें क्या तकलीफ होती है। अगर महात्मा छोटा है तो बेचारे का मैं छोटा होता है। यह मुसलमान है और मुसलमान के मैं का मजा तभी तक है जबतक मुहम्मद बड़ हैं। यह जैन है, जैन का मजा तभी तक है जबतक महावीर तीर्थंकर हैं। अगर पता चल जाय कि महावीर तीर्थंकर नहीं हैं तो बेचारे का मैं मरा। फिर यह किसी छोटे गुरू को पकड़कर चल रहा था। गया, सब खो गया। उसको जो पीड़ा होती रही है उसके मैं की पीड़ा है। इस ख्याल को समझ लेना है। इस जगत की सारी अशांति मैं की अशांति है। मैं के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है लेकिन मजा देखें कि वह मैं कहता है कि मुझे शांत होना है। वह आखिरी तरकीब है मैं की। फिर वह शांत होने के बहाने भी करता है, आंखें बन्द करके बैठ जाता है, आसन लगा लेता है और कहता है कि शांत हो रहा हूं। और बीच-बीच में आंखें खोलकर देखता रहता है कि कोई देखने वाला निकला कि नहीं। देखा किसी ने नहीं कि कितने शांति से हम आसन लगाये बैठे हैं। मंदिर में बड़ी देर से बैठे हुए हैं और भी आराधक आये कि नहीं, गांव में खबर पहुंची कि नहीं। वह मैं देख रहा हूं आंख खोलकर कि कौन कितना मानता है। यह मैं बीच-बीच में झांककर देख लेता है कि जब इतनी साधना कर रहा हूं तो जनता को पता चल गया है कि नहीं? किस-किस को खबर मिल गयी। लोग आना शुरू हो गये हैं कि नहीं।

एक संन्यासी के आश्रम में गया था। एक बड़े मजे की बात हो गयी। सभी आश्रमों में वैसी मजे की बात होती है। संन्यासी एक बहुत बड़े तख्त पर विराजमान हैं। उस तख्त के नीचे एक छोटा तख्त है, उसपर एक दूसरा संन्यासी विराजमान है। उस तख्त के नीचे और एक छोटी सी तख्त है उसपर तीसरे संन्यासी विराजमान हैं। मैं गया, उन संन्यासी ने मुझसे कहा, आप जानते हैं, बगल में कौन बैठा हुआ है? मैंने कहा, मैं नहीं जानता, आप बताने की कृपा करें। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, यह आदमी हाईकोर्ट का जज था, संन्यासी हो गया है। सब छोड़ दिया है, बहुत विनम्र है। देखते हैं, यह कभी मेरे बराबर आसन पर नहीं बैठता है, आसन छोटा रखता है। मैंने कहा, महाराज, वह आपसे तो आसन छोटा रखे हुए हैं लेकिन आपके मरने की प्रतीक्षा करता है क्योंकि उससे भी नीचे एक तीसरा बैठा हुआ है। वह उससे बड़ा आसन रखे हुए है और आप मरे तो वह आसन पर बैठेगा और वह नंबर की सीढ़ी लगी हुई है वह दूसरा आदमी उसके आसन पर बैठेगा। इसमें भी पद है, प्रतिष्ठा है। और इस आदमी को क्यों मजा आ रहा है कि एक हाईकोर्ट के जज को बिठाल दिया है। अब बताने की क्या जरुरत है कि हाईकोर्ट का जज है। मामला खत्म हो गया। फिर हाईकोर्ट में जज ही नहीं रहा अब। अब गेरूआ आसन पहनकर आया है तो अब कैसा जज है लेकिन यह बताता है कि यह आदमी हाईकोर्ट का जज है कोई साधारण आदमी नहीं है। यह मुझसे नीचे बैठा है, यह कोई साधारण आदमी नहीं। लेकिन इसको बताता क्यों है। यह बताता इसलिए है कि मैं किसी साधारण आदमी के ऊरर नहीं बैठा हुआ हूं, हाईकोर्ट का जज बैठा हुआ है नीचे। अपने हाथ में हाईकोर्ट के जज भी संन्यासी हो गये। वह नीचे बैठा हुआ है और यह आदमी विनम्र है। ठीक है, क्योंकि मेरे बराबर नहीं बैठा लेकिन यह आदमी विनम्र है और आप क्या हैं? और आपको इसमें मजा आ रहा है कि मेरे बराबर नहीं बैठता। आप बड़े खुश हैं। गुरु के पैर तो बहुत बार छुए हैं एक बार पैर जरा उनके सिरपर रखकर देख लो तब असलियत पता चलेगी कि मामला क्या है। तब गुरू गर्दन पकड़ लेगा, तब पता चलेगा कि वहाँ भी मैं बैठा हुआ है। पैर छूकर वह तृप्त होता है पैर मत छुओ तो नाराज हो जाता है और अगर सिर से पैर लगा दो तो पागल हो उठेगा और जो हैं उनके पीछे वे भी पागल हो उठेंगे क्योंकि उनके गुरू का सारा का सारा जाल पूरे मैं का है और इस मैं के जाल के धार्मिक रूप भी हैं, अधार्मिक रूप भी हैं, संस्कृति के रूप भी है, साहित्य के रूप

भी हैं, कलात्मक रूप भी हैं हजार हजार रास्ते से वह मैं आदमी को पकड़ेगा। इसे पहचानना पड़ेगा, इसे भीतर खोजना पड़ेगा। एक एक इंच तलाश करनी पड़ेगी कि यह कहाँ बैठे पड़ा है और जहाँ जहाँ आप पहुंच जायेंगे, जहाँ जहाँ आपकी दृष्टि पहुंच जायेगी वहीं वहीं से विलीन होता चला जायेगा। खोजें और भीतर एक इंच न छोड़ें जहाँ खोज न की हो। सारी ईंट ईंट खोज डालें भीतर और आखिर में आप पायेंगे वह कहीं भी नहीं है। जैसे कोई दिया लेकर किसी अंधेरे घर में जाये तो अंधेरे को खोजने लगे और दिया ले जाय और देखे कोने कोने में कि अंधेरा कहाँ है। जहाँ जहाँ दिया जायेगा वहाँ वहाँ अंधेरा नहीं होगा। आखिर वह घर के बाहर आकर कहेगा, अंधेरा नहीं है। मैंने दिया ले जाकर देखा, वह कहीं नहीं है। लेकिन दिया मत ले जायें भीतर तो अंधेरा है और दिया ले जायें तो नहीं है। जब तक हमने खोज नहीं की तबतक मैं है, जब हम खोजेंगे तब मैं नहीं होगा। इसलिए मैं को बदलने से बचें, मैं की बदलाहट से बचें। मैं बदलने के लिए हमेशा तैयार है। वह कहता है कि इस शक्ल में पसंद नहीं रहा, फिर मैं दूसरी शक्ल में राजी है। तुम कहते हो धन में अब मुझे मजा नहीं आता तो अब मैं त्याग में राजी हूं। कोई कहता है पाप करने में अब मजा नहीं होता, अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती तब हम पुण्य करने में राजी हैं। एक कहता है कि शराब घर में जाने में अब मेरे अहंकार को तृप्ति नहीं मिलती, अब ध्यान रखें, शराब पीने वाला, सिगरेट पीने वाला और सब भीतर एक तृप्ति कर रहे हैं। छोटा बच्चा भी अकड़ के सिगरेट पी लेता है क्योंकि वह देखता है कि जितने लोग सिगरेट पीते हैं अकड़ के। अहंकार मालूम पड़ता है। छोटा बच्चा सिगरेट सिगरेट के लिए नहीं पीता है सिर्फ पीता है कि सिगरेट पीने से बड़प्पन मिलता है। लगता है कि हम भी कुछ हैं। हम कोई साधारण नहीं हैं। वह जो सिगरेट पीने का रस है, सिगरेट का नहीं है, मैं का रस है। सिगरेट में रस क्या हो सकता है? पागलपन के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक आदमी धुआँ भीतर ले जाय और बाहर निकाले। यह क्या कर रहे हो। धुआँ भीतर किसलिए कर रहे हो, क्या हो गया है तुम्हारे दिमाग में? लेकिन चूंकि सारी दुनिया पागल है इसलिए कोई किसी से नहीं कहता कि यह कर क्यों रहे हो। धुआँ जाये बाहर भीतर और यह क्यों करते हो? इससे खांसी आ सकती है, तकलीफ हो सकती है। रस तो कुछ भी नहीं है लेकिन रस है और रस बिल्कुल दूसरा है इसलिए जब कोई सिगरेट पीने वाले को समझाता है कि स्वास्थ्य खराब हो जायेगा तो उसपर कोई असर नहीं होता। क्योंकि रस है ही नहीं उसमें। रस बिल्कुल दूसरा है। सिगरेट पीने वाला एक अकड़ में आ जाता है। मैं को लगता है कि हम हैं कुछ। सिगरेट पीने में भी ब्रांड है, वह सब मैं के ब्रांड हैं। शक्ति से वह एक गरीब आदमी का मैं पीता है, अमीर आदमियों का मैं वह ऐसी सिगरेट पीता है जिसको बहुत थोड़े लोग पी सकते हैं। फिर वह उसको बार-बार नहीं पीता है, सिर्फ हाथ में लगाकर धुआँ उड़ाता है। बार-बार पीने की जरूरत नहीं है लेकिन वह कीमती सिगरेट को वैसे उड़ा देता है। वह सब मैं है। वह कश लेता है और फेंक देता है। कुछ मिलने का सवाल नहीं, असल में सवाल दिखाने का है कि देखो।

यह जो सारा का सारा हमारा जाल है, चाहे हम सिगरेट पीते हैं, चाहे हम शराब घर में जाते हों और चाहे हम कपड़े पहनते हों, उस सबके पीछे असलियत बहुत दूसरी हो गयी है। वह सारे के पीछे मैं काम करता है, उसकी खोज करनी पड़ेगी, उसकी पहचान करनी पड़ेगी कि वह कहाँ कहाँ पकड़े हुए है। मैं कहीं मैं के आधार पर ही नहीं जी रहा हूं? अगर मैं के आधार पर जी रहा हूं तो अशांति ही संभव है, शांति संभव नहीं है और हम जी रहे हैं, इसकी खोज करनी पड़ेगी, इसकी इन्क्वायरी जरूरी है, इसके भीतर जासूसी करनी पड़ेगी, इसके भीतर जाना पड़ेगा, इसका पीछा करना पड़ेगा कि कहां-कहां यह छिपा हुआ है। जन्मों-जन्मों से वह पकड़े हुए है और जब मेरी पहचान पूरी होती है, जब वह रेकग्नाइज कर लिया जाता है जब पहचान लिया जाता है कि यह रहा है और जब रत्ती-रत्ती पहचान हो जाती है और कण कण और सूक्ष्म से सूक्ष्म उसकी तरंगें पहचान में आ जाती हैं तो वह विदा होने लगता है, विलीन होने

लगता है। एक घड़ी आती है कि मैं विदा हो जाता है। मैं के साथ ही आत्मा विदा हो जाती है तब जो शेष रह जाता है, तब क्या शेष रह जाता है ? वही शेष सत्य है, वह शेष शांति है, उसे कोई भी नाम दो, सत्य कहो, मोक्ष कहो, परमात्मा कहो, नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता है। कोई भी नाम कहो, सब नाम सत्य है उसके लिए। कोई भी नाम दे दें, और वह कोई भी नाम न दें तब भी चल जायगा। लेकिन इधर मैं का मिटना जरूरी है। विज्ञान तो पहुंच गया पदार्थ के मिटने पर, इधर धर्म को भी पहुंचना पड़ेगा-मैं, आत्मा के मिटने पर। जब दोनो मिट जायेंगे पदार्थ भी और आत्मा भी तब जो शेष रह जायेगा वह तरंगीयित, वह सागर है। वही सागर है, एक तरह पदार्थ की तरफ ठोस होकर दिखायी पड रहा है, वही सागर दूसरी तरह में ठोस होकर दिखा ी पड़ रहा है और वह सागर ठोस नहीं है, जीवंत तरंगों का सागर है। जिस दिन यह लगेगा उस दिन रास्ते पर चलना ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं चल रहा हूं, लगेगा उर्जा जा रही है, ऐसा नहीं लगेगा कि मैं बोल रहा हूं लगेगा उर्जा बोल रही है, वही बोल रहा है। ये वेदों के उपनिषदों के ऋषि अगर यह कह सके कि हम नहीं बोलते, उसी की वाणी है तो उसका कारण यह नहीं था कि जो दावा कर रहे थे कि जो हम बोलते हैं वह इसलिए ही है। उसका कुल कारण इतना था कि हम हैं ही नहीं बोल कैसे सकते हैं। वही बोल रहा है, वही चल रहा है, वही खा रहा है, वही पी रहा है, वही उठ रहा है, वही जी रहा है, वह जा रहा है, वही जन्म लेता है, वही मरता है, हम हैं ही नहीं। और अगर यह बोध स्पष्ट होता चला जाय तो फिर कैसी अशांति है, कैसा दुख है, फिर कैसी मृत्यु, फिर कैसा अज्ञान, फिर कैसा अंधकार फिर सब गया। व्यक्ति मिट जाय, सब मिट जाता है जो भी दुखपूर्ण है और हम सब मैं की गठरी बने हुए हैं।

मैंने सुना है बंगाल के गाँव में एक छोटा सा लोक नाट्य है। उस लोकनाट्य में एक आदमी भगवान के मंदिर पर वृन्दावन पहुंचा है। वृन्दावन के मंदिर में वह प्रवेश करने लगा, उसके हाथ में कुछ नहीं है, उसके पास कोई व्यक्ति नहीं है। जूता उसने बाहर रख दिये, छड़ी उसने बाहर छोड़ दी लेकिन द्वारपाल उसे रोकता है कि ठहरो, ठहरो। सामान बाहर निकालकर आओ। वह आदमी कहता कि लेकिन सामान तो मैं बाहर रख आया हूं, हाथ देखते नहीं खाली हैं। मैं बिल्कुल खाली हूँ मुझे जाने दो। मैं भगवान की प्रार्थना में आया हूँ। द्वारपाल कहता है ऐसे नही सब सामान बाहर रख आओ। वह कहता है आप पागल तो नहीं हो गए हैं, सामान कहाँ है ? वह द्वारपाल कहता है कि जो सामान तुम बाहर रख आये हो उसे भी लाओ तो कोई हर्जा नहीं है लेकिन यह जो मैं है मैं भीतर जायेगा। मैं भगवान के दर्शन करूँगा, मैं पूजा करुंगा। इस मैं को बाहर रख आओ क्योंकि इस मैं को लेकर कोई भी आज तक भगवान के मंदिर में प्रविष्ठ नहीं हुआ है लेकिन वह आदमी कहता था कि जो सामान दिखायी पड़ता था वह तो मैं रख आया हूँ यह मैं को कैसे निकाल के रख दो। द्वारपाल कहता है जाओ, खोजो अगर नहीं पा सको तो आ जाना।

रूमी ने एक गीत गाया है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर जाकर दरवाजा खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है कि कौन हो, कौन हो तुम? और वह कहता है मैं हूं, पहचानी नहीं तू। आवाज नहीं पहचानी, पैर के कदम नहीं पहचानी, मैं हूं तेरा प्रेमी और भीतर सन्नाटा हो जाता है। वह फिर दरवाजा बन्द कर लेती है जैसे घर में कोई नहीं। वह चिल्लाता है, क्या हो गया तुझे, बोलती क्यों नहीं, द्वार क्यों नहीं खोलती, मैं हूं तेरा प्रेमी। भीतर से सिर्फ इतनी आवाज आती है कि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। इधर मैं पहले से ही मैं हूं। अब तुम एक मैं आ गये तो बड़ी तकलीफ होगी और सब जानते हैं कि प्रेमी के घर दो मैं समा गये हैं, बड़ी मुश्किल है। हर प्रेमी के घर मैं दो-दो मैं बैठे हुए हैं और वहां एक नर्क पैदा हो गया है। उसने कहा, एक मैं हूं, अब दूसरे मैं की इस घर में जगह नहीं है। अभी तुम लौट जाओ और उसने यह भी कहा जाते वक्त, ध्यान रखना कि जो प्रेम कहता है मैं वह प्रेम में कैसे हो सकता है। वह प्रेमी वापस लौट गया। वर्ष-वर्ष बीते, फिर वह नहीं लौटा, न मालूम कितनी बरसातें, कितनी धूप, कितनी रातें, अंधेरा गुजरा वह आया, फिर उस द्वार पर दस्तक

दी। फिर पीछे से पूछा गया, कौन हो तुम ? उसने कहा, अब तो मैं नहीं हूं : तू ही है और रूमी की कविता कहती है कि द्वार खुल गये। लेकिन रूमी को मरे बहुत दिन हो गये। जैसे मन होता है कि जाकर उसको उठा-कर कहूं, कविता तुमने आधे में रोक दी। यह कविता पूरी नहीं है। ठीक ही है अब भी उसने कहा, मैं नहीं हूं, तू ही है। लेकिन जिसका मैं मिट जाता है उसका तू भी मिट जाता है क्योंकि तू तभी तक दिखायी पड़ता है जबतक मैं है। तो वह कहने लगा मैं नहीं हूं। लेकिन अगर तुम नहीं हो तो यह कहने वाला भी कौन होता है कि मैं नहीं हूं और अगर तुम नहीं हो तो यह कैसे कहते हो कि तू ही है। रूमी ने जल्दी दरवाजा खोल दिया। मैं अभी नहीं दरवाजा खोलने को राजी होता। मैं तो कहता हूं, वह प्रेमी से फिर कहती अभी लौट जाओ, क्योंकि जबतक तू है तबतक मैं कैसे मिट सकता है। लेकिन तब आगे कविता को बढ़ाना बहुत मुश्किल है। शायद इसीलिए रूमी बढ़ गयी हों। कविता उसने रोक दी हो। आगे कविता बढ़ानी बहुत मुश्किल है क्योंकि कविता को बढ़ने के लिए भी दो चाहिए। सब नाटक के लिए कम से कम दो-दो चाहिए और जब एक ही रह जाय तो कैसे कविता और जब एक ही रह जाय तो कैसा आना और जब एक ही रह जाय तो किसके द्वार पर दस्तक ? फिर कौन पूछेगा, कौन उत्तर देगा। फिर मैं कहता हूं कविता आगे बढ़ती है, प्रेमी फिर चला जाता है। फिर बरसात, फिर धूप लेकिन फिर वह कभी नहीं लौटता है क्योंकि लौटने वाला ही नहीं रह गया है लेकिन तब वह तो नहीं लौटता लेकिन जिसकी तलाश थी वह खुद ही उसके पास पहुंच जाता है क्योंकि जब मैं ही मिट गया है तो फिर मिटने की बात ही क्या रह गयी। फिर तो प्रेमी बाहर चला जाता है लेकिन मैं कहता हूं, आप कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते लेकिन परमात्मा आप तक आ जायगा उस दिन जिस दिन आप नहीं हैं। आज तक कोई आदमी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है और आज तक कोई आदमी मोक्ष तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। जिस दिन आदमी मिट जाता है, मोक्ष आजाता है, परमात्मा को पा जाता है। वह आया ही हुआ है। वह मैं के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। वह मौजूद ही है। वह चारों तरफ खड़ा है, यहीं है, लेकिन इस मैं के कारण दिखायी नहीं पड़ता है। यह मैं एकमात्र अंधापन है, ब्लांइडनेस है और यह मैं चला जाय, आंख खुल जाती है। इस अनुभव में ही जीवन की सार्थकता और धन्यता उपलब्ध होती है। इस अनुभव में ही वह घड़ी आती है जो आनन्द की है। वह घड़ी जिसमें दुख का सवाल नहीं, क्योंकि गया वह। वह ग्रंथि चली गयी जो दुखती थी। वही दुखता था वही चला गया। अब कैसा दुख, अब कैसी पीड़ा, अब कैसी मृत्यु ? क्योंकि वह मैं ही था जो मरता था, जो है वह तो कभी नहीं मरा है। जो है वह कभी मरता ही नहीं है। वह मैं ही बार बार जन्मता है और बार बार मरता है इसलिए भूल के भी यह मत कहना कि कभी आत्मा का पुनर्जन्म होता है, आत्मा का कोई पुनर्जन्म नहीं है। सिर्फ मैं बराबर जन्मता है। सब पुनर्जन्म इगो के हैं और जिस दिन मैं नहीं उस दिन कोई पुनर्जन्म नहीं, फिर जीवन है, फिर नहीं कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है, फिर अंतहीन अनादि जीवन है। उस अनादि जीवन का नाम परमात्मा है, उसका नाम मोक्ष है, वही सत्य है। हम असत्य हैं इसलिए उस सत्य को नहीं पाते इस सत्य को खोजें, इस असत्य में मैं की ही शक्ति में खोज नहीं की जा सकती। इस असत्य को खोजें, खोजें, खोज से यह असत्य मिट जायगा, गिर जायगा, शून्य हो जायगा। इसके शून्य होते ही सत्य प्रगट हो जाता है। मैं को मिटाना है। मैं को मिटते हुए जानना है। ऐसा जानना है कि मैं मिट जायगा। और जहां मैं नहीं है वहीं ध्यान है, वहीं द्वार है। जिस द्वार से हमने बात शुरू की थी वह बहुत बन्द द्वार है। एक खुला द्वार चाहिए। सब द्वार जो बन्द हैं मैं के द्वार हैं और एक खुला द्वार जो है वह न मैं है, वह नो आई का द्वार है। वही ज्ञान है। ध्यान यानी ज्ञान। आप नहीं हैं। गैर ध्यान यानी जहां आप नहीं हैं। अपने को, स्वयं को, आत्मा को, अहंकार को, आत्मीयता को सबको विदा दे दें। इसे विदा आप दे सकते हैं। खोजेंगे और पावेंगे तो विदा हो जाता है। ***

स्मृतियों के इन्द्र धनुष

आचार्य श्री प्रारंभ से ही कितने आक्रामक हैं

–शिव

१५ मई १९७० की संध्या, आचार्य श्री के पास बैठे थे रायपुर के श्री कमलेश शर्मा, नारायण व मैं। यों ही बातें हो रही थीं कि दाढ़ी का प्रसंग आ गया। कमलेश ने बताया कि जब वे विज्ञान महाविद्यालय में प्रवेश ले रहे थे तो प्रोफेसर ने पूछा : "यह दाढ़ी तुमने क्यों रखी है?" और यहाँ तक कि दाढ़ी बनवा देने पर ही मुझे प्रवेश दिया था उनने। लेकिन था अपने विषय का बड़ा विद्वान :"

आचार्य जी ने मुस्कुराते हुए कहा : "तो तुमने दाढ़ी बनवा भी दी उनके कहने पर ?"

कमलेश ने कहा : "जी हां, दाढ़ी बनवाए बगैर प्रवेश ही मिलना असंभव था।"

आचार्य जी ने कहा : "एक बार मेरी दाढ़ी को लेकर भी झंझट खड़ी हुई थी। हुआ यह कि सागर विश्व विद्यालय में उन दिनों उपकुलपति थे, डा. त्रिपाठी। मुझे २०० रु० महीने स्कॉलरशिप मिलनी थी। और स्कॉलरशिप की स्वीकृति के लिए उपकुलपति के समक्ष साक्षात्कार के लिए जाना पड़ता था। मैं उन दिनों खड़ाऊं पहनता था जो कि जिधर से चलूं, आवाज करता था। शरीर पर केवल लुंगी। और दाढ़ी तो थी ही। और मैं परिवार के लोगों को कह चुका था कि मैं पढ़ाई के लिए आप लोगों से पैसे नहीं लूंगा, केवल स्कॉलरशिप के पैसे से पढ़ूंगा। तो एक प्रोफेसर थे डॉ राय। वे मुझे बहुत बहुत चाहते थे। वे ही मुझे उपकुलपति से मिलवाने जा रहे थे। वहां जाने के पहले उन्होंने मुझसे यह कहलवा लिया कि मैं वहाँ चुपचाप रहूंगा और कोई विवाद नहीं करूंगा।

लेकिन हम वहां पहुँचे तो सबसे पहला सवाल उपकुलपति ने यही किया कि मैंने दाढ़ी क्यों रखी है ? प्रो० राय घबड़ाए और उन्होंने कुर्सी के नीचे से मेरी लुंगी खींची कि मैं चुप रहूं। लेकिन मैंने प्रो० राय से कहा कि अब आप जा सकते हैं क्योंकि आप जिस काम के लिए मुझे लेकर आये थे, उसका (स्कॉलरशिप का) तो सवाल ही खत्म हो गया। अब मैं इनके प्रश्न का उत्तर दूंगा। प्रो० राय बड़े असमंजस में पड़ गए। उपकुलपति भी बहुत घबड़ाए कि आखिर मामला क्या है। उन्होंने कहा : "भई, मैंने तो यों ही By the way पूछ लिया था। मैंने कहा : "मैं भी यों ही by the way उत्तर दे दूंगा। असल में इन्होंने यहां आने के पहले मुझसे आश्वासन लिया था कि मैं कोई विवाद न करूंगा। मगर अब बात ही ऐसी आ पड़ी है। आपने सवाल ही ऐसा कर दिया है कि अब मैं स्कॉलरशिप छोड़ता हूं। स्कॉलरशिप की बात ही खत्म हो गई, उसका अब कोई सवाल न रहा। इसलिए प्रो० राय का काम खत्म हो गया। अब मैं आपको उत्तर देता हूँ, इसलिए ही इन्हें कह रहा हूं कि या तो आप अब चले जायें और या फिर चुपचाप बैठे रहें, बीच में न बोलेंगे।

प्रो० राय बैठे ही रहे। मैंने उपकुलपति से कहा, "आपने सवाल गलत पूछा है। असल में मुझको आपसे

पूछना था कि आपने दाढ़ी बनाई क्यों है ? क्योंकि मैंने दाढ़ी के साथ कुछ भी नहीं किया। मैंने दाढ़ी रखी ही नहीं। वह जैसी बढ़ती आई है, बढ़ते आने दिया है, बस। मैंने उसके साथ कुछ किया नहीं। पर आपने दाढ़ी के साथ कुछ किया है। आपने दाढ़ी कटाई है। तो पहले तो सवाल आपसे ही हो सकता है कि आपने कटाई क्यों है ?" इस पर उपकुलपति ने परेशानी अनुभव की। उन्होंने कहा : "असल में इस विषय पर मैंने कभी गंभीरता से विचार नहीं किया," मैंने कहा, "आप विचार कर लीजिए। एक हफ्ते बाद आ जाऊं उत्तर के लिए ? कल आ जाऊँ ? कितने बजे आऊँ ?" उन्होंने कहा : "जरूरी नहीं है कि कल भी मैं उत्तर दे ही सकूं।" मैंने कहा : "फिर यह बात इतने से नहीं खत्म होगी। अब तो यह बात तभी खत्म होगी जब आप दाढ़ी कटाने का कारण बतायें ताकि मैं भी दाढ़ी कटाने का विचार करूँ और या फिर अगर कारण नहीं बताते तो आप भी दाढ़ी को जैसी बढ़ती है, बढ़ने दें। इस पर उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा याचना की और इतने प्रभावित हुए कि स्कॉलरशिप बिना कोई दूसरा प्रश्न पूछे स्वीकार कर लिए। और बाद में तो मेरे बड़े मित्र हो गये। और सागर विश्वविद्यालय में जब तक मैं रहा उन्होंने मुझे बहुत सारी सुविधाएं दीं, जो कि सामान्यतः संभव नहीं होतीं।

बाद में आचार्य जी ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। कहा कि वे एक बड़े ईमानदार व साहसी थे। एक छात्र से क्षमा-याचना करना साहस की ही बात थी। अपने समय में उन्होंने सारे देश के चुने-चुने विद्वान प्रोफेसर्स व छात्रादि इकट्ठे किये थे, आदि आदि...।

जीवन संगीत से आलोकित : नई साज सज्जा में

ज्योति शिखा

(आचार्य श्री के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिकी)

संपादक : श्री महिपाल

मूल्य : वार्षिक : ५ रु०
एक प्रति : १)२५ न० पै०

प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र,
रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन रोड, बंबई : १
फोन नं. २६४५३०

साधक के प्रश्नः मनीषी की दृष्टि

आचार्य श्री से श्री हरिकिशन दास अग्रवाल द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न—क्या निराकार वस्तु का ध्यान हो सकता है ? और यदि हो सकता है, तो क्या निराकार, निराकार ही बना रहेगा ?

उत्तर—ध्यान का साकार या निराकार से कोई भी संबंध नहीं है।
ध्यान का विषय वस्तु से ही कोई सबंध नहीं है।
ध्यान है विषय वस्तु रहितता।
गाढ़ निद्रा की भांति।
लेकिन, निद्रा में चेतना नहीं है।
और ध्यान में चेतना पूर्णरुपेण है।
अर्थात् निद्रा अचेतन ध्यान है।
गाढ़ निद्रा में भी हम वहीं होते हैं, जहां ध्यान में होते हैं।
लेकिन, मूर्च्छित।
ध्यान में भी हम वहीं होते हैं जहां निद्रा में होते हैं।
लेकिन, जाग्रत।
जागते हुए सोना ध्यान है।
या सोते हुए जागना ध्यान है।
फिर जो जाना जाता है, वह न आकार है न निराकार है।
वह है आकार में निराकार, या निराकार में आकार।
असल में वहां द्वन्द नहीं है, द्वैत नहीं है और इसलिए हमारे सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं।
वहां न ज्ञाता है, न ज्ञेय है।
न द्रश्य है, न दृष्टा है।
इसलिए वहां जो है, उसे कहना असंभव है।
कठिन नहीं असंभव है।
ध्यान है मन की मृत्यु।
और भाषा है मन की अर्द्धांगिनी।
वह मन के साथ ही सती हो जाती है।
वह विधवा होकर जीना नहीं जानती है।

चाहे तो भी जी नहीं सकती है।
और उसका पुनर्विवाह भी नहीं हो सकता है।
क्योंकि, मन के पार जो है, वह उससे विवाह के लिए चिर अनुत्सुक है।
उसका विवाह हो ही चुका है
शून्यता से।

प्रश्न—ध्यान किसे कहते हैं और उसे करने की क्या विधी है?

उत्तर—निर्विचार चेतना ध्यान है।

और निर्विचार के लिए विचारों के प्रति जागना ही विधी है।
विचारों का सतत प्रवाह है मन।
इस प्रवाह के प्रति मूर्च्छित होना———सोये होना—अजाग्रत होना—
साधारणतः हमारी स्थिति है।
इस मूर्च्छा से पैदा होता है तादात्म्य।
मैं मन ही मन मालूम होने लगता हूँ।
जागें और विचारों को देखें।
जैसे कोई राह चलते लोगों को किनारे खड़े होकर देखे।
बस इस जागकर देखने से क्रांति घटित होती है।
विचारों से स्वयं का तादात्म्य टूटता है।
इस तादात्म्य भंग के अंतिम छोर पर ही निर्विचार—चेतना का जन्म होता है।
ऐसे ही जैसे आकाश में बादल हट जावें तो आकाश दिखाई पड़ता है।
विचारों से रिक्त चित्ताकाश ही स्वयं की भौतिक स्थिति है।
वही समाधि है।
ध्यान है विधि।
समाधि है उपलब्धि।
लेकिन ध्यान के संबंध में सोचें मत।
ध्यान के संबंध में विचारना भी विचार ही है।
उसमें तो जायें।
डूबें।
ध्यान को सोचें मत चखें।
मन का काम है सोना और सोचना।
जागने में उसकी मृत्यु है।
और ध्यान है जागना।
इसलिए, मन कहता है - 'चलो— ध्यान के संबंध में ही सोचें!'

यह उसकी आत्मरक्षा का अंतिम उपाय है।
इससे सावधान होना।
सोचने की जगह, देखने पर बल देना।
विचार नहीं दर्शन—बस यही मूलभूत सूत्र है।
दर्शन बढ़ता है, तो विचार क्षीण होते हैं।
साक्षी जागता है, तो स्वप्न विलीन होता है।
ध्यान आता है, तो मन जाता है।
मन है द्वार, ससार का।
ध्यान है द्वार मोक्ष का
मन से जिसे पाया है, ध्यान में वह खो जाता है।
मन से जिसे खोया है ध्यान में वह मिल जाता है।

प्रश्न—ध्यान की गहराई में उतरने से उसकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि किस प्रकार से होगी और ध्यान की अंतिम अवस्था क्या है?

उत्तर—आप भोजन कर लेते हैं, फिर उसे पचाना नहीं होता है, वह पचता है।
ऐसे ही आप जागें विचारों के प्रति, मूर्च्छा न रहे——इतना आप करें।
यह है ध्यान का भोजन।
फिर पचना अपने आप होता है।
पचना यानि ध्यान का खून बनना—ध्यान की गहराई।
भोजन आप करें और पचना परमात्मा पर छोड़ दें।
वह काम सदा से ही उसने स्वयं के हाथों में ही रखा हुआ है।
लेकिन, यद्यपि आप भोजन पचा नहीं सकते हैं, फिर भी उसके पचने में बाधा जरुर डाल सकते हैं।
ध्यान के सबंध में भी यही सत्य है।
आप ध्यान के गहरे होने में बाधा जरूर डाल सकते हैं।
विचारों के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव ही बाधा है।
शुभ या अशुभ चुनाव न करें।
निंदा या स्तुति दोनों से बचें।
न कोई विचार अच्छा है, न बुरा।
विचार सिर्फ विचार है,
और आपको विचारों के प्रति जागना है।
सूक्ष्मतम चुनाव भी बाधा है जागने में।
तराजू के दोनों पलडे सम हों तभी, ध्यान का कांटा स्थिर होता है।
और ध्यान का कांटा स्थिर हुआ कि तराजू, पलडे और कांटा सब तिरोहित

होजाते हैं।
फिर जो शेष रह जाता है वही समाधि है।
वही ध्यान की अंतिम अवस्था है।

प्रश्न—स्वाध्याय और ध्यान में क्या अंतर है।

उत्तर—स्वाध्याय अर्थात स्वयं का अध्यन।

और स्वयं का अध्यय विचार के बिना संभव नहीं है।
इसलिए स्वाध्याय विचार की ही प्रक्रिया है
बल्कि ध्यान है विचारातीत।
वह है विचारों के प्रति जागना।
सोचने में जागना नहीं है।
क्योंकि; जागे और सोचना गया।
सोच-विचार में होने के लिए निद्रा आवश्यक है।
सोच-विचार, आंखें खोलकर स्वप्न देखना है
स्वप्न आदिम सोच-विचार है।
स्वप्न, चित्रों की भाषा में सोचता है।
सोचना स्वप्न का सभ्य रूप है।
सोचने में चित्रों की जगह शब्द और प्रत्यय ले लेते हैं।
लेकिन, ध्यान एक अलग ही आयाम है।
वह स्वप्न मात्र से मुक्ति है।
वह विचार मात्र के पार जाना है।
स्वप्न अचेतन मन का चिंतन है।
विचार चेतन मन का चिंतन है।
ध्यान मनातीत है।
चेतन मन जब अन्य को विषय बनाता है तो वह भी वह विचार है, और जब
स्वयं को ही विषय बनाता है तो भी।
ध्यान में विषय से ऊपर उठना है।
विषय मात्र से।
इससे कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है, कि विषय क्या है।
धन या धर्म।
पर है या स्व।
मौलिक भेद——रूपांतरण या क्रांति तो तभी घटित होती है, जब चेतना
विषय के ही बाहर हो जाती है।

क्योंकि, तभी स्व को जाना जा सकता है।
जब चेतना के पास जानने को कुछ भी शेष नहीं बचता है, तभी वह स्वयं को जान पाती है।
ज्ञेय जब कोई भी नहीं है, तभी आत्मज्ञान होता है।
अर्थात् स्वाध्याय है स्वयं के संबंध में सोच विचार और ध्यान है स्वयं को जानना।
और निश्चय ही जिसे जानले ही नहीं, उसके संबंध में सोचेंगे विचारेंगे क्या।
और जिसे जान ही लिया उसके संबंध में सोच विचार का प्रश्न ही कहां है ?
इसलिए, स्वाध्याय से बचें तो अच्छा है।
क्योंकि, वह भी ध्यान में बाधा है।
और सर्वाधिक सबल।
क्योंकि, वह ध्यान का नाटक बन जाता है।
मन तो उससे बहुत प्रसन्न होता है।
क्योंकि, इस भांति वह पुनः स्वयं को बचा लेता है।
लेकिन, साधक भटक जाता है।
वह फिर विषय से उलझ जाता है।
मन है विषय—उन्मुखता।
उसे चाहिए विषय।
वह विषय चाहे कोई भी हो।
काम हो या राम।
वह विषय—मात्र से राजी है।
इसलिए, ध्यान के लिए काम और राम दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है।
पर और स्व दोनों को समभाव से विदा देनी है !
तभी वह प्रकट होता है, जो कि स्व है और जो कि पर भी है।
या कि जो न स्व है, न पर है, वरन् बस है !

प्रश्न—सजगता और साक्षित्व दोनों एक हैं, या उनमें भेद हैं ?

उत्तर—सजगता और साक्षित्व दोनों एक नहीं हैं, लेकिन एक ही वस्तु के दो छोर अवश्य हैं।
वे चेतना के दो अनुभव हैं।
चेतना को एक ऐसा तीर समझें, जिसमें कि दोनों ओर फल हैं।
इस तीर का एक फल उस ओर है, जिसके प्रति कि चेतना चेतन है।

और दूसरा फल उस ओर है जहां से कि चेतना चेतन है।।
सजगता में पहली बात की ओर इशारा है।
साक्षित्त्व में दूसरी बात की ओर।
ध्यान इन दोनों में से किसी भी छोर से शुरू किया जा सकता है।
क्योंकि, एक छोर अनिवार्यतः दूसरे छोर को भी अपने साथ ही लपेट पाता है।
सजग हों तो साक्षी आ जायेगा।
साक्षी हों तो सजगता आ जायेगी।
जहां चेतना है, वहां दोनों हैं।
जहां अचेतना है, वहीं दोनों नहीं हैं।
और जहां एक है, वहां अर्धचेतना, अर्धमूर्च्छा है।
साधारणतः मनुष्य अर्धचेतना—अर्धमूर्च्छा की अवस्था में है।
वह अर्ध-सजग, अर्धसाक्षी है
उसका होने का बोध, अतिधूमिल है।
जैसा, कुँहासा घिरा हो चारों तरफ, ऐसा ही।
कुछ दिखाई भी पड़ता है, नहीं भी दिखाई पड़ता है।
जो देखता है, उसकी भी झलक कभी मिलती है, कभी नहीं मिलती है।
ध्यान इस अर्धस्थिति को तोड़ने का प्रयास है।
निद्रा में—गहरी निद्रा में—स्वप्न तुल्य निद्रा में, सजगता और साक्षी दोनों सो जाते हैं।
ध्यान की पूर्णता में दोनों खो जाते हैं।
इसीलिए, समाधि और सुषुप्ति विपरीत होकर भी एक अर्थ में समान है।
सुषुप्ति में न सजगता है, न साक्षी है; क्योंकि दोनों ही सो गये हैं।
समाधि में भी दोनों नहीं हैं क्योंकि दोनों खो गये हैं।
सुषुप्ति में मूर्च्छा पूर्ण है इसलिए द्वैत नहीं है।
समाधि में प्रज्ञा पूर्ण है इसलिए द्वैत नहीं है।
पूर्ण सदा अद्वैत है।
लेकिन, सुषुप्ति के गर्भ में द्वैत है।
जबकि, समाधि में द्वैत की मृत्यु हो गई है।
ध्यान है प्रक्रिया, मूर्च्छा से प्रज्ञा की ओर।
उसके प्राथमिक प्रारंभ ध्रुव दो हैं—सजगता और साक्षित्व।
बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लिए सजगता से प्रारंभ करना आसान है।
क्योंकि सजगता बाहर से प्रारंभ होती है।
अंर्तमुखी व्यक्तित्व के लिए साक्षित्व से प्रारंभ आसान है।
क्योंकि साक्षित्व भीतरी ध्रुव से शुरू होता है।
ध्यान के ये प्रस्थान बिंदु भिन्न हैं, लेकिन उपलब्धि एक ही है।

जैसे ही ध्यान में एक ध्रुव स्पष्ट होता है वैसे ही दूसरा ध्रुव भी अनिवार्यतः प्रकट हो जाता है।
और जैसे ही दोनों ध्रुव पूर्णरूपेण प्रकट होते हैं, वैसे ही दोनों का अतिक्रमण होता है।
यह अतिक्रमण ही समाधि बन जाता है।
फिर दो नहीं है।
फिर तो जो है, वह है।

प्रश्न "ध्यानपूर्वक किया हुआ जाप क्या फलीभूत नहीं हो सकता है ?"

उत्तर—जब ध्यान ही करना है तो जाप अनावश्यक है।

जपादि, ध्यान से बचने की विधियां हैं।
वे विचार को ही पीछे के द्वार से भीतर लाने के उपाय हैं।
ध्यान है जागरण—सजगता—साक्षीभाव।
और जपादि हैं - ज्यादा से ज्यादा आत्मसम्मोहन।
स्वयं को सुलाने के उपाय।
नींद न आती हो तो उपयोगी हैं!
शांतिदायी भी हैं।
वैसे ही जैसे नींद है।
शब्द की पुनरुक्ति आत्मसम्मोहन बन जाती है।
किसी भी शब्द की।
फिर चाहे हो—ओम्, चाहे हो कुछ और!
अशांत मन स्वयं को भूलने के लिए तो सदा ही तैयार है।
इसीलिए, तो मादक द्रव्यों का इतना आकर्षण है।
जपादि अरासायनिक मादकतायें हैं।
लेकिन भूलने से क्या होगा ?
विस्मरण विमुक्ति तो नहीं है ?
जो है, वह फिर लौटेगा, फिर-फिर लौटेगा।
बेहोश कितनी देर रहियेगा ?
नहीं, ऐसे नहीं चलेगा।
स्वयं को बदलना ही होगा।
विस्मरण नहीं, रूपान्तर ही चाहिए।
ध्यान रूपांतरण है।
और जाप से, इसीलिए, वह आमूल भिन्न है।

ध्यान है, स्मृति-पूर्वक होना ।
जो है, बाहर या भीतर, उसे जागते हुये होने का नाम ध्यान है ।
जाप है क्रिया ।
ध्यान है अक्रिया ।
जाप में कुछ करना होगा ।
इसीलिए वह मानसिक है ।
और मन की कोई भी क्रिया कभी भी मन से बाहर नहीं ले जा सकती है ।
ध्यान है जागना—देखना—साक्षित्व ।
यह क्रिया नहीं है ।
यह समस्त क्रियाओं का विश्राम है ।
इसलिए, ध्यान मन के पार है ।
और जो सजातीय है, उसे जानने का द्वार है ।

●●●

आचार्य श्री के आगामी देश–व्यापी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
२८, २९, ३० एवं ३१ जुलाई, ७०	बड़ौदा	प्रवचन	श्री चंद्रकांत पटेल, 'आसोपालव' बैंक ऑफ इंडिया के सामने रायपुरा, बड़ौदा
८, ९, १० एवं ११ अगस्त ७०	अहमदाबाद	प्रवचन	श्री जयंती भाई, जीवन जागृति केन्द्र, डायचेम कार्पोरेशन, खाड़िया चार रास्ता, अहमदाबाद-१ फोन : २४०८३
१२ अगस्त/१७ अगस्त/ १८ अगस्त ७०	बंबई	सत्संग	श्री ईश्वर भाई, जीवन जागृति केंद्र बंबई : १ फोन : २६४५३०

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३।००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के दिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।००	८।००
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	३।५०	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९ नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. सत्य की पहली किरण	६।००	—	—
२२. प्रभु की पगडंडिया	४।००	—	—
२३. क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२४. बिखरे फूल	०।३५	—	—
२५. जीवन और मृत्यु	—	१।००	—
२६. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२७. अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

[५] चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट जलंधर शहर।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्र नगर।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

[१७] श्री महेन्द्र कुमार मानव, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म० प्र०)

[१८] श्री सौभाग्यचंद्र तुरखिया, २ प्रभात सोसाइटी, सुरेन्द्र नगर।

Gram - Newkumar

Phone - 251868
297463

EMKAY TRADERS

Stockists of Imported & Indian

Spare Parts for Diesel Engines

& Tractors

♦

Specialists In

FUEL INJECTION EQUIPMENTS

Authorised Dealers For :

MOTOR PAL' Fuel Injection Equipments
Western Brand Cylinder Liners

9-OAK Lane,
Bombay-1

*

Phone : 293070
Cable : Vidushak
Bombay

We Assure Our Best Services

For All Time

To Come

WITH BEST COMPLIMENTS

FROM

ASSOCIATED BUSINESS CORPORATION

Court Chambers, 2nd Floor

35, New Marine Lines,

Bombay—20 BR.

PLASTICIZERS

For the

Plastics Paint & Perfumery Industries

DOP—Dioctyl Phthalate

DIOP—Di-iso Octyl Phthalate

DAP—Dialphanyl Phthalate

610 P—Dialfol 610 Phthalate

DBP—Dibutyl Phthalate

DMP—Dimethyl Phthalate

DEP—Diethyl Phthalate

Available from :-

Pioneers in manufacture of Phthalate Plasticizers.

INDO-NIPPON CHEMICAL COMPANY LIMITED

Alice Building, 339, D. N. Road, Bombay - 1

Gram-Plasticizer Telex- Innipon 011 (2081) Phone - 251723
252269

STRESSCON CORPORATION

FOR

ANYTHING & EVERYTHING

IN

PRECAST PRESTRESSED CONCRETE

CONSTRUCTION

202, Lal Bahadur Shastri Marg,

Ghatkopar,

Bombay—86 AS

Telephones : 582593 & 582594

उत्तम तम्बाखू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

मोहनलाल हरगोविंददास

जबलपुर म० प्र०

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा
स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, कमला नेहरू नगर, जबलपुर ।
मुद्रण : श्रीपाल प्रिंटर्स, राजा गोकलदास महल, से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित
वर्ष : २ ॥ अंक : २ ॥ १६ जुलाई १९७० ॥ मूल्य : एक प्रति : ०.६० न० पै०
॥ वार्षिक : १२ रु० ॥

"ध्यान और साधना की अपूर्व गहराई के लिए

अनोखा अवसर"

आजोल साधना शिविर

(आचार्य श्री के सान्निध्य में : २७, २८, २९ एवं ३० अगस्त ७० को)

संपर्क सूत्र : सुश्री धर्मिष्ठा शाह, संस्कारतीथ, आजोल (ता० बीजापुर, जि० महेसाणा) गुज०